* गीतासार *

राजमित्र, राजरत्न, आत्माराम
(अमृतसरी)

★

ज-य-दे-व : ब्र-द-र्स
ब-ड़ौ-दा

॥ ओ३म् ॥

गीता-सार

जिसको

कैसरेहिन्द, रायबहादुर सेठ जुगलकिशोरजी
बिरला के दान-उद्देश्य की पूर्ति के लिए
स्वर्गीय राजमित्र, राज्यरत्न, पंडित

आत्माराम राधाकृष्ण अमृतसरी

व्याख्यानवाचस्पति-

भू० पू० एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर बड़ौदा राज्य-

रचयिता-

संस्कार-चन्द्रिका, सृष्टि-विज्ञान, तुलनात्मक धर्म-विचार, दिग्विज्ञान, ब्रह्मयज्ञ, शरीर-विज्ञान, वैदिकविवाहादर्श, सामान्यधर्म, आत्मस्थान-विज्ञान, आर्यधर्मेन्द्र जीवन इत्यादि-ने निर्मित किया।

प्रकाशक-

जयदेव ब्रदर्स, बड़ौदा।

चतुर्थ संस्करण } १९४० { मूल्य पांच आने

शुद्धि पत्र

पृष्ठ-	पंक्ति-	अशुद्ध	शुद्ध
५	१९	धंमः	धर्म
७	श्लोक २	राडा	राड
८	श्लोक ३	महती	महती
८	८	धृष्टद्युम्ने	धृष्टद्युम्ने
८	१५	युध्द	युद्ध
११	१	तथ	तथ
११	३	કૃષ્ણ	કૃષ્
१२	४	य	ये
१२	१४	ધડપણ	ધડપ
१३	श्लोक १६	—	श्लो
१४	श्लोक १८	पुराणों	पुराणे
१४	,, ,,	शरी रे	शरी
१४	१८	જાથ	જા
१६	७	તેવી વિષયે	તેવા વિષયતે
१६	श्लोक २५	शोचीतु–	शोचितु
१७	१९	દ્વાર	દ્વા
१८	११	સઘળા	સઘળા
१९	७	સઘળાં	સઘળા
२०	३५	०	श्लो
२२	५	કાચબો	કાચબો
२२	१५	બુધિ	બુદ્ધિ
२४	१६	त्यारे	तारे
२६	१३	સંભવ	સંભાવ
२७	श्लोक ५०	शत्रवत्	शत्रुवत
२९-३०-३१	६-१२-२	બ્રહ્મ	બ્રહ્મ
३०	८	होत	होता
३२	८	रे	र
३२		પ્રકૃતિ	પ્રકૃતિ

चतुर्थ संस्करण की प्रस्तावना

स्व० श्री० पूज्य राजमित्र, राजरत्न पं० आत्मारामजी, व्याख्यान वाचस्पति, आर्यन् फिलॉसॉफर का नाम हिन्दी संसार में सुपरिचित है। वे थे पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री पद से एक बार आर्य समाज के यश का डंका बजाने वाले, ज्वालापुर महाविद्यालय, बम्बई गुरुकुल, जांलधर कन्या विद्यालय, वृन्दावन-गुरुकुल, आदि-आदि आर्य संस्थाओं की अद्वितीय सहायता करने हारे, पंजाबी हाई स्कूल (हिन्दू सभा कालेज) के संस्थापक, हिन्दी भाषा के प्रबल प्रचारक, राष्ट्र विधाता महर्षि दयानन्द जी सरस्वती प्रतिपादित सिद्धान्तो के प्रबल प्रसारक तथा समर्थक।

भारतवर्ष की हरिजनोद्धार प्रवृत्ति के आद्य प्रवर्तक और गुजरात के अछूतों के तारणहार और उद्धारक पिता, गुजरात में दयानन्द के मिशन—असम्भव को सम्भव करने वाले, पतिपावन आर्य-नरेन्द्र श्रीमन्त स्वर्गीय सयाजीराव गायकवाड़ के प्रेरक सखा, राजरत्न और राजमित्र, प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय महाराजा शाहु छत्रपति के आदरणीय राजगुरु, (शास्त्री बुवा), गुजरात में आर्य समाज के निर्माताओं में अग्रणी, पुरानी आर्य विभूतिओं में अग्रपद पर होते हुए भी महर्षि दयानन्द जी महाराज तथा आर्य समाज के शांत, गम्भीर, निष्काम अनन्य सेवक, तथा भक्त, महामुनि पण्डित गुरुदत जी विद्यार्थी के शिष्य प्रवर, आर्य कुमार परिषदों के सभापति, हिन्दुराष्ट्र के स्वप्नद्रष्टा, आर्य समाज के सुप्रसिद्ध तत्त्वचिन्तक—आर्यन फिलोसोफर, विद्वान लेखक-वक्ता-शास्त्रार्थी व्याख्यान वाचस्पति, नेता, सृष्टि विज्ञान, दिग्विज्ञान, संस्कार

चन्द्रिका के रचयिता, बडौदा आर्य कुमार महासभा के उपप्रधा
तथा आर्य कन्या महाविद्यालय के कुलपति–पद पर विराजक
गुजरात की राष्ट्रविधायक रचनात्मकअद्वितीय संस्थाओं के प्राण
पिता, तथा प्रेरणा उन महात्माकी एक बहुतही सुन्दर तथा उपयो
रचना आपके सामने उपस्थित की जाती है।

इस लघु पुस्तिकाके तीन संस्करण आपके सामने प्रस्तुत कि
जा चुकेहैं, इस संस्करण में जहां हमने छः श्लोक "❀" इस निशा
वाले बढायेहैं, वहां पूज्य पंडितजी की संक्षिप्त जीवन-रेखाभी आप
सामने रखी है। इस पुस्तक की उपयोगिता के विषय में कुछ
कहना अस्थान पर होगा।

हम श्री० स्वामी भूमानन्द जी महाराज को धन्यवाद दे
हैं जिन्होंने इसके प्रकाशन में छः श्लोक की वृद्धि की है। यह गी
सार राजरत्न जी की लेखनी प्रवाह में है। छः श्लो
बढाने की चेष्टा तो की; परन्तु उनका भाव पंडित जी के
श्लोकों में से किसी न किसी में आ ही जाता है।

आशा है योगेश्वर कृष्ण महाराज के प्रेमी मात्र और गी
के माननेवाले इस अमूल्य प्रकाशन को अपनायेंगे।

छपाई में कुछ भूलें रह गयीं हैं। जिनको सुधार कर पढ़
चाहिए।

बम्बई
कृष्णाष्टमी ९७

विनीत—
प्रतापचन्द्र
प्रकाशक

स्वर्गीय महात्मा

राजरत्न, राजमित्र, आत्मारामजी अमृतसरी
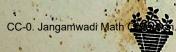
कारेली बाग के ऋषि

(ले. श्री प्रतापचन्द्र पंडित अमृतसरी)

जहांनगो हमह आतिशो दूद बाश।
तु दर आतिरास सन्दलो ऊद-बाश ॥ *

किसकी लेखनी में सामर्थ्य है जो प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद पिताजी के जीवन की महिमा का यथार्थ रूप वर्णन कर सके ? कौन कह सकता है उनकी अकथनीय कथाको ? वे व्यक्ति न थे अपितु जीवित संस्था थे।

इस छोटी सी पुस्तिका के रचयिता का संक्षिप्त जीवन परिचय देना अस्थान पर न होगा। क्योंकि आज वे नहीं हैं। उनकी अमर कृत्तियों में से एक कृति " गीतासार " आपके सामने प्रस्तुत है।

स्वर्गीय पूज्य राजरत्न, राजमित्र पंडित आत्मारामजी व्याख्यान वाचस्पति का जन्म संवत् १९२४ विक्रमी आषाढ बदी एकम् को अमृतसरमें हुआ था। आपके पूज्य पिताजी श्रीयुत् राधाकृष्णजी लुधियाने के समृद्ध तहसीलदार थे। माहेश्वरी कुलभूषण राधाकृष्णजी की प्रसिद्धि अमृतसर-लुधियाना में एक 'दिव्य-दानी'

---

* यदि जो सारा जगत, अग्नि और धूम्र होजाय तो भी तू उसमें चन्दन और अगर की बत्ती बन कर जलते जलते भी संसार को सुगन्ध देना।

तहसीलदार के नाम से थी। प्रतिदिन गरीबों को आटा, चना आदि बाँटे बादही दानी तहसीलदार भोजन ग्रहण करते थे। स्वयं श्री राधाकृष्णजी दोदानी, धर्मनिष्ठ, सेवाभावी, दानशील तथा विद्वान् थे और उस समय के प्रसिद्ध समाज सुधारक मुंशी अलखधारी जी के ग्रंथों का अध्ययन किया था और मूर्ति पूजा में इतना नहीं मानते थे जितना उनकी धर्मपत्नी दानवीरा श्रीमती मायादेवीजी मानती थीं। श्री० राधाकृष्णजी गीताके परमभक्त थे और नित्य प्रातः गीता का पाठ करते थे। यह आदर्श दम्पत्ति ब्राह्मणों का, साधु-सन्तों का सत्कार स्वर्ण-मुद्राओं से किया करते थे। ईश्वर की दया से लक्ष्मी की कृपा थी और इनके ठाट-बाट सब पंजाब के सरदारों व राजाओं समान थे। चार घोड़े, चार गायें, चार बकरिएँ, चार चपरासी, चार नौकर अमृतसर में चार हवेली, लाहोर में तीन हवेली इत्यादि सब शाही ठाट थे। जब हमारे चरित्र नायक मात्र पांच वर्ष ही के थे तब उनके पिता की छत्रछाया उठ गई और माता मायादेवीजी की संरक्षता तथा शिक्षा में आपका विद्याभ्यास आरम्भ हुआ। मायादेवीजी अत्यन्त स्वच्छताप्रिय थीं, निडर, स्वाभिमानिनी तथा जरा तेज स्वभाव की थीं। दान करने में उन्होंने अपने पतिदेवता को भी मात कर दिया और दान देते सदैव अभिमान पूर्वक कहतीं कि तहसीलदारन हूं। उस युग के तहसीलदार आज-कल के राजे महाराजों से कम नहीं थे।

एन्ट्रेस (मेट्रिक) पास करके आप गवर्नमेंट कालेज लाहौर में प्रविष्ट हुए। जब एफ. ए. का फार्म भेजा जा चुका था और परीक्षा करीब ही थी तब उनकी वृद्धा माताजी सख्त बीमार होगईं। अमृतसर रहकर बराबर एक मास सहस्रों रुपये उपचार में खर्च किये पर विकराल काल से न बचा सके। कालेज जाने से पूर्व ही आप आर्य समाज़ में प्रविष्ट हो चुके थे। आपकी माताजी कट्टर वैष्णव थीं पर आपके आर्य होने से कभी नाराज नहीं हुईं। वह कहा करती थीं कि "आर्य अच्छे होते हैं, क्योंकि आत्माराम उन्हें सेवा, दान-पुण्य से नहीं रोकता है।"

डिप्टी कमिश्नर मि० लैङ्ग ने आपको तहसीलदारी के लिये चुना और नियुक्ति करा दी। इन्हीं दिनों में आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान मुनिवर पं० गुरुदत्तजी विद्यार्थी अमृतसर आये और उनके व्याख्यान आपने सुने। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित हो आप उनसे मिले और उन्होंने इन्हें सरकारी नौकरी को त्याग कर आर्य समाज के विशाल क्षेत्र में आने का आमंत्रण दिया। आपने गवर्नमेंट की समृद्ध सेवा से त्यागपत्र दे दिया और तहसीलदारी को अस्वीकार कर लाहौर पहुंचे। वहां पर आपने पं० गुरुदत्तजी से पाणिनीय अष्टाध्यायी का अध्ययन किया और अष्टाध्यायी को भाष्य सहित कंठस्थ भी किया।

सन् १८९२ ईसवी के लगभग आप लाहौर रहे और दयानंद मिडिल स्कूल में पं० गुरुदत्तजी के साथ-साथ शिक्षक

का भी कार्य करते रहे। दुर्दैव से पं० गुरुदत्तजी की अकाल मृत्यु ने आत्मारामजी की कार्य दिशा बदल दी और एक दफ़ा फिर मित्रों के अनुरोध से लाहौर हाईकोर्ट में एक मुतरजम की जगह खाली हुई उसके लिए उक्त पद की कॉम्पीटीटिव परीक्षा दी और प्रथम नम्बर आप उत्तीर्ण हुए। आपकी नियुक्ति होगई, पर पं० गुरुदत्त जी के सत्संग के प्रभाव से नौकरी पर एक दिन भी नहीं गये, क्योंकि वैदिक धर्म प्रचारार्थ अमेरिका जाने की जो भावना गुरुदत्त जी छोड़ गये थे वह और भी दृढ़ होगई थी।

इनका सार्वजनिक जीवन तो कब से ही आरम्भ हो चुका था, पर अब स्वतन्त्ररूप से क्षेत्र में आगये। स्कूल की मास्टरी का त्यागपत्र दे दिया और अमृतसर में आकर पंजावी हाईस्कूल खोला जो आज भी 'हिन्दू-सभा-कालेज' के रूप में विद्यमान है। इसीसे अधिकांश पंजाब तथा युक्तप्रांत के आर्य आपके 'मास्टरजी' के नाम से अधिक परिचित हैं। स्कूल की मास्टरी के साथ-साथ आप समाजों के उत्सवों पर भी जाते रहते थे। इन्होंने स्कूल की मास्टरी छोड़ दी क्योंकि आर्य सिद्धान्तों की मास्टरी करनी थी वैदिकधर्म के प्रचारार्थ आप उपदेशक हो गये और आपके समकालीन पं० लेखरामजी, महात्मा दुर्गाप्रसादजी, महात्मा मुन्शीरामजी, राय ठाकुरदत्तजी धवन, श्री० रलारामजी आदि आर्य समाज के प्रचारक तथा समर्थक थे। आपने आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाव के मंत्री पद को सुशोभित किया और वेद प्रचार निधि के लियें भ्रमण तथा खूब प्रचार आरम्भ कर दिया।

जब रहतिओं (अछूतों) की शुद्धि हुई उस समय आप ही सर्व प्रथम व्यक्ति थे। जिन्होंने भरी सभा में उनके हाथ से जलपान लिया। आप माहेश्वरी जाति से इस पाप के लिये दंडित किये गये और आपका हुक्का-पानी बंद किया गया।

आपका विवाह काशीपुर के दृढ आर्य समाजी मुन्शी वृन्दावनजी की विदुषी पुत्री श्रीमती यशोदादेवीजी के साथ पूर्ण वैदिक विधि से हुआ और आपके सब कार्यों में आपका सम्पूर्ण सहयोग तथा सहायता रही है। आप सर्व प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने मारवाडी माहेश्वरी समाज में से परदा प्रथा का त्याग किया और इसके लिये भी बिरादरी ने आपको सदैव के लिए जाति से अलग करदिया। राजरत्नजी अपने आपको जातिपरिवाचक 'दोदानी-दुदानी' या 'दिव्यदानी' न लिखते हुए 'अमृतसरी' ही लिखते थे।

इन्हीं दिनों में दो दलबंदियां हुईं। घास-पार्टी और मांस-पार्टी। इनका मुकाबला करने के लिए पंडितजी ने सैकड़ों ट्रैक्ट छपवा डाले और "हितकारी" नामक साप्ताहिक पत्र भी निकाला। आपने अपने गवेषणात्मक उत्तम लेखों तथा युक्तियुक्त पूर्ण दलीलों से उस समय के गंदे प्रचार को रोका। आपने प्रतिनिधि सभा के लिए 'सत्यार्थ प्रकाश' का उर्दू में भाषान्तर किया और वैदिक धर्म के उच्च आदर्शों के प्रचारार्थ अनेक ग्रंथ रचे। आप हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, आदि के उच्च कोटि के

विद्वान थे और गुजरात में आये बाद आपने गुजराती तथा मराठी भी अच्छी तरह सीख ली थी।

आपकी प्रसिद्धि चारों ओर होगई और आप व्याख्यान देते सारे भारतवर्ष में दौरा करने लगे। आपने उत्तमोत्तम शास्त्रार्थ भी किये और रावलपिण्डी और नगीने के शास्त्रार्थ तो अभी भी जनता याद करती है। मुसलमान मौलवी आपकी अकाट्य युक्ति व प्रमाणों से मुग्ध रह जाते थे और आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। आपकी लेखनी में अजब जादू था। जब देखो तब आप स्वाध्याय करते हुए नजर आते या लेख लिखते। हजारों लेख आपने लिखे होंगे। ट्रेक्टोंको छोड़कर आपने पन्द्रह ग्रंथ लिखे हैं। जिनमें से मुख्य "संस्कार चन्द्रिका" और "सृष्टि विज्ञान" हैं। इन्हीं ग्रन्थों की विद्वत्ता के कारण पंडितजी को आर्यजगत् एक महान् आर्यन् फिलासॉफर मानता है।

आर्य-सिद्धान्त-केसरी मास्टर आत्मारामजी ने आयु के महत्त्व-पूर्ण बीस वर्ष पंजाब में आर्य समाज की सेवा में पूरे किये। महात्मा स्वामीनित्यानद जी महाराज की प्रेरणा से और श्रीमंत बड़ौदा नरेशकी आज्ञासे बडौदा राज्यमें आये, पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री तथा उपदेशक से अब पंडितजी बड़ौदा में अन्त्यजोद्धार की बागडोर संभाले एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर बने।

आर्य प्रतिनिधि सभा लाहौर, पंजाबी हाईस्कूल आदि संस्थाओं की सेवा के साथ-साथ आपने बलप्राप्ति, मांडूक्योपनिषद्,

वैदिक विवाहादर्श आदि ग्रन्थों की रचना की। चारों दिशाओं में आपकी ख्याति सूर्य के समान प्रकाशित थी और इन ग्रन्थों की अपूर्व सफलता ने उसे और भी प्रसारित किया।

अब चलिये आपको बड़ौदे की सैर करायें।

बड़ोदे में पंडितजी सन् १९०८ इसवी में पधारे और बड़ोदा राज्य अन्तर्गत अछूतोद्धार का कार्य संभाला। स्वामी श्रीनित्यानंदजी और स्वामी श्रीविश्वेश्वरानंदजी ने ही बड़ोदा जैसे प्रगतिशील राज्य में आर्यसमाजकी अमर ध्वजा फहराने की प्रेरणा दी थी। नौकरी करने की अनिच्छा होते हुए भी आप पंजाब की कुटिल पार्टी-बाजी से खिन्न थे, इसी से स्वर्गीय महाराजा सयाजी-राव गायकवाड के निमंत्रण ने उन्हें आकर्षित किया और वे बडोदे की नवरचना करने, बडोदा नरेश को आर्य बनाने और सदियों से पीडित तथा दलित-जाति-अन्त्यजों का उद्धार करने बड़ोदा राज्य के एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर फॉर डीप्रेस्ड क्लासीस बने। साथ ही साथ एक छात्रावास भी था जिसके आप सुपरिन्टेन्डन्ट नियुक्त हुए। उस वक्त के आजसे तीस वर्ष पूर्वके गुजरातको और भारत को देखते हैं तो, सोचते हैं तो, और आज के जमाने के साथ तुलना करते हैं तो, आकाश-पाताल का अंतर नजर आता है। आज के प्रगति युग में राष्ट्रीय जागृति के साथ साथ स्वदेशी-प्रचार, विधवा-विवाह, अन्त्यज स्पर्श और उद्धार, स्त्री शिक्षा तथा परदेशगमन आदि प्रश्न उस समय भारी कोलाहल मचाते थे,

आज भी कट्टरपंथियों को सुधार की बातें कटु, असामयिक तथा धर्म विरोधी लगती हैं। उस समय के गुजरात के ही नहीं अपितु भारतवर्ष के हरिजनोद्धार प्रवृत्ति के आद्य प्रवर्तक और खासकर गुजरात के हरिजनों के तारणहार, उद्धारक, पिता, आर्य-संस्कृतिके, तत्त्व विज्ञान के परम विचारक, आर्य जगत् के परम पूजनीय पंडित आत्मारामजी ने वडोदे की "ढेढ़ इन्सपेक्टरी" स्वीकार की।

"न इतराइये देर लगती हैं क्या,
जमाने को करवट वदलते हुए।"

अनेक कष्ट तथा विपदाओं में पंडितजी ने अपना कार्य आरम्भ किया वे निडर और निर्भय थे। वे मानते थे—

My Strength is as the strength of ten because my heartis pure.

वे सत्य और पवित्रता को जीवन का ध्येय मानते थे। वे आये बड़ौदा में प्रभु की अमृतवाणी का अमल करने " यथेमाम् वाचं कल्याणी मा वदानि जनेभ्यः, ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥ "

वड़े जोर शोर से महाराजा सयाजीराव गायकवाड की कृपा से हरिजनोद्धार की प्रवृत्ति आरम्भ हुई। राजरत्नजी गुजरात में नये व्यक्ति थे। यहां के रहन-सहन से अपरिचित, भाषा से अनभिज्ञ, रीत-रिवाज से अज्ञात, और कार्यक्षेत्र सदियों से पीडित और दलित जाति के गांव। गुजरात के 'गामडे' और वहां

की गामड़िया गुजराती। पंडित जी के लिए भारी समस्या सामने थी। पर यह पंजाबी कर्मवीर जिसका ध्येय आत्म-त्याग, सत्-धर्म प्रचार और महर्षि दयानन्दजी के सिद्धान्तों का प्रतिपालन करते हुये आर्य समाज की विजय पताका का बीजारोपण गुजरात में करना था, कैसे हताश हो सकता था! रात्रि दिवस इसी की चिन्ता, यही मनन और स्वाध्याय था। गुजरात के गांव-गांव में भ्रमणकर आपने जनता में अज्ञानता तथा रूढिवाद को दूर करने का उपदेश दिया। इन पर लोगों ने पत्थर फेंके, इन्हें हिन्दुओं के कुएँ से पानी नहीं भरने दिया, सरकारी अमलदार (ऑफिसर) होते हुए भी सरकारी चौरों (धर्मशाला) में आसानी से उतर नहीं सकते थे। बडोदे में कोई मकान भाडे से नहीं मिल सकता था। क्या-क्या वर्णन करें और क्या नहीं–उनका जीवन एक शान्त क्रांतिकारी जीवन था। स्वयं प्रेस टेलीग्राम देकर या अपने मुख अपनी प्रशंसा के लेख लिख वह ख्याति प्राप्त करना नहीं जानतेथे इसी से जो उनके निकट परिचय तथा सम्बन्धमें आयेहैं वे जानते हैं कि, किन-किन कठिनाइयों में पूज्य पिताजी ने अपनी साधना पूर्ण की। कभी गुजरात तथा बडोदा राज्यका इतिहास लिखा जावेगा तब पूज्य पंडितजी का नाम हरिजन प्रवृत्ति के अग्रणी (Pioneer) कार्यकर्ताओंमें सर्वप्रथम स्वर्णाक्षरों में लिखा जावेगा। गुजरात के प्रसिद्ध उपन्यास लेखक श्री० रमणलाल वसंतलाल देसाई के शब्दों में कहा जाय तो—" पंडितजी साथे आपणा धर्म अने समाज सेवानो लांबो इतिहास अस्त थाय छे. अग्रणी तरीके,

Pioneer तरीके तेमणे जे सहन कर्युं अने सिद्ध कर्युं एनो ख्याल आपणा जेवा तेमनी सेवाओ नां फल भोगवनार ने भाग्येज आवे जन सेवा मां तेमणे पोतानी काया घसी नाखी हती. एमना अवसान थी वडोदराने, गुजरातने, दलितो ने अने हिन्दुधर्मने, भारे खोट पडी छे. आप (उनकी संतान) तेमने पगलेज चालो छो अने तेमने घणा कार्यकर्त्ताओ आप्या छे, एटलो संतोष ।" उन्हों ने अपनी प्रसिद्ध के लिए न कभी किसी से सार्टिफिकेट लिए न प्रशंसापत्र । महात्मा गांधीजी जब बड़ोदा अन्त्यज वसतिगृह में आये तब उस समय उन्हें स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि वे हरिजन जैसी जाति के लिए आत्म समर्पण करेंगे और उनका भावी कार्यक्रम इसी जाति के उद्धारार्थ समाप्त होगा । पण्डित जी के कार्यों की प्रशंसा करते हुए उन्होंने जो उद्‌गार उस समय निकाले थे उसमें इस कार्यक्षेत्र के गुरु पण्डित जी को माना था । आज पंडितजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री० शान्तिप्रियजी इसी आश्रम के व्यवस्थापक हैं ।

आपका साहित्यिक प्रेम व स्वाध्याय इतना ऊंचा और बढ़ाचढा था कि चौबीसों घण्टों रात्रि के भी किसी समय वे अपनी लेखमाला लिखते नजर आते थे । उनकी बड़ी भारी मेज पर टिम टिमाती हुई दीवी-जिसे मिट्टी का "कोडिया"(दीया)कहते हैं, अण्डी के तेल से जलती आगन्तुक को कौतूहल पैदा करती थी । जीवन भर विदेशी चीज का सेवन नहीं किया—घडी तक रखना उचित नहीं समझते थे । स्वदेशी की बातें तो हम आज सुनते हैं पर वे तो जन्मकाल से तथा जबसे होश सँभाला तबसे स्वदेशी वस्त्र, स्व-

देशीदवा, स्वदेशी भाषा और एक शब्दमें स्वदेशीमय उनका सारा जगत् था। बिजली की रोशनी तथा मिट्टी के तेल की हरिकेन बिना ही वही पुरानी मिट्टी के दीवे से उन्होंने संस्कार—चन्द्रिका, सृष्टि-विज्ञान दिग्विज्ञान, ब्रह्मयज्ञ, तुलनात्मक धर्म विचार आदि महाग्रन्थों की रचना की। हिन्दी भाषा से इन्हें इतना अत्यधिक प्रेम था कि उन्होंने अपनी मातृभाषा पंजाबी होते हुए भी घर में हिन्दी ही का बोलचाल रक्खा। इतना ही नहीं स्वयं उर्दू—फ़ारसी के प्रकाण्ड पंडित थे, पर अपने किसी भी पुत्र या पुत्री को उर्दू नहीं पढ़ाई। बड़ोदा राज्य की ओरसे प्रकाशित 'स्टेट गज़ट' की भाषा गुजराती थी उसे भी आपने प्रयत्न कर हिन्दी लिपि करवाई। सरकारी राज्य भर की प्राथमिक स्कूलों में हिन्दी दाखिल करवाई और यह विषय अनिवार्य रक्खा गया। राज्यभर के सब विभागों में हिन्दी की परीक्षा प्रत्येक अफ़सर के लिए लाज़मी की गई और उन परीक्षाओं का प्रबन्ध भार आपके ही सुपुर्द था। राज्य की ओरसे सब भाषाओं का एक कोष बनवाया गया और हिन्दी का विभाग आपके ही पास था। वह अमर ग्रन्थ "श्री सयाजी शासन शब्द कल्पतरु" अभी भी विद्यमान है।

मात्र दस वर्ष की सेवाओं के पश्चात् आपको श्रीमंत महाराजा साहब ने भरे दरबार में "राजरत्न" की मानभरी पदवी दी और योग्य व्यक्ति की योग्यकाल में योग्य कदर की।

यदि राजरत्नजी कभी आज ब्रिटिश गर्वन्मेन्ट की नौकरी से निवृत्त हुए होते तो शायद पूरी पेन्शन ७५०) की प्राप्त करते और इसके उपरांत अपनी संतान का भावी भी निश्चित करते जाते। बड़ोदा राज्य की एक लगन तथा भक्ति सें की गई सेवाओं के फलस्वरूप उन्हें या उनकी संतान को कोई लाभ या प्रोत्साहन जैसा चाहिये था वैसा नहीं मिला। अनेक रजवाड़ों की भांति आज बड़ोदे में भी बिना खटपट और खुशामद के कोई व्यक्ति आगे नहीं आ सक्ता स्वर्गीय महाराजा के लिए प्रसिद्ध था कि वे चुन-चुन कर योग्य व्यक्ति की कदर करते थे, पर वृद्धावस्था में सारा राज्य कार्यभार मशीन की भांति चलता रहा, और उनकी पहले जैसे शक्ति और परख क्षीण हो गई थी।

पंडित जी का विद्या व्यसन दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया और आपने कोई भी आर्यसमाज का पत्र-पत्रिका नहीं छोडी, जिसमें आर्य सिद्धान्तोंकी चर्चा-रक्षा तथा समन्वय करते लेख न लिखेहों। चाहे जिस कोनेसे आर्य या वैदिक सिद्धान्तों पर आक्रमणहो आपकी अपूर्व तर्क युक्त प्रबल लेखनी विरोधी पक्षको चुप करानेमें सदैव समर्थ और तत्पर थी। आप जितने निडर थे उतने ही निरभिमानी थे। सबसे प्रेम करना आदर, करना योग्य सत्कार करना आपका सहज सुलभ स्वभाव था। संसार में शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति हो, जिसका किसी न किसी क्षेत्र में कोई न कोई दुश्मन न हो, पर अमृतसरीजी एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनका खोजने पर भी शत्रु नजर नहीं आता था। आर्य समाज के इस विद्वान् ने ज्ञान

योगी बनकर वेदमाता की प्रशस्त सेवा की है। इनकी वाणी तथा लेखनी में वह जादू था कि प्रतिस्पर्द्धी भी एक बार दांतों तले अंगुली दबा लेता था। इस धर्मप्राण आत्मा ने न जाने कितनी बार शास्त्रार्थों में जीवन पर बाजी लगाकर आत्मा की अमरता का सबक सीखा था। महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त तथा शिष्यों में आप एक थे। महर्षि की सुरभित वाटिका का यह पुष्प पंजाब की कर्मभूमि में ही अपने सौन्दर्य और सुरभि को विखेर कर ही नहीं रह गया था—उसने अपने गुरु की जन्मभू के चरणों में कुचला जाना भी योग्य समझा था। गरीबों, दलितों एवं अछूतों की हरपुकार में "ओंकार" का पवित्र नाद सुनने वाले, दरिद्र नारायण के भक्तों में से पंडितजी भी एक थे। लोग जो चाहे कहें, पत्थर मारें—विष दें—परन्तु दयानन्द अचल रहता है दयानन्द का यह शिष्य इसी प्रकार गालियँा खाकर-ठुकराया जाकर एक ही आदर्श को लिए अचल रहा। Back to Vedas, प्राचीनता में जीवन है—शांति है। इतने पर भी आप सदैव सत्य के ग्रहण करने में तत्पर रहते थे। मनुष्य को उन्नति करनी हो तो उसे अपने सिद्धान्तों पर अटल रहते हुए भी Open to conviction रहना चाहिये। आप मानते थे—

> " निंदन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
> लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
> अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
> न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥ "

बड़ोदा नरेश ने अपनी पुत्री श्रीमती इन्दिरा राजे जो आज कल कुच विहार की महाराणी हैं, उन्हें भी धर्मशिक्षा तथा हिन्दी सिखाने का कार्य पंडित जी को दिया। बडोदे के राज्यघराने के बाद पंडित जी कोल्हापुर नरेश श्री. शाहु छत्रपति महाराज के राजगुरु बनते हैं। वहां के सब स्कूल और कालेज में वैदिक धर्म शिक्षा को प्रविष्ट करा राजाराम कालेज को आर्य समाज के हस्तगत कर वापिस आते हैं।

सारा जीवन सार्वजनिक जीवन होते हुए भी आप आदर्श गृहस्थी थे। उन्होंने अपनी निधि-अपनी सन्तान की ओर कभी दुर्लक्ष नहीं किया। उन्हें उत्तम शिक्षा-ज्ञान-दिक्षा देने में कोई कमी नहीं रक्खी, अपूर्व संतोष था कि सब के सब धर्मावलम्बी आस्तिक–सदाचारी तथा सेवाभावी हैं। बच्चों सें आपको अत्यंत प्रेम था, बच्चों के साथ आप बच्चे थे--इसुख्रीस्त ने कहा है— " Verily I say unto you, except ye be converted and become as little children, ye shall not enter into the kingdom of Heaven "—अर्थात् मैं सच कहता हूं, कि जबतक तुमने अपने आपको छोटे-छोटे बच्चों में परिणत नहीं कर लिया स्वयं तुम बालक नहीं हो गये, तबतक स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न कर सकोगे। आप बड़े ही वात्सल्य प्रेमी पिता थे। आधे से कई अधिक–आपको जानने वाले, आपको 'पिताजी' ही संबोधित करते थे। आपकी बडी पुत्री सुखदादेवी जी की अकाल मृत्यु हुई–आप बडे दुःखित हुए और कहते थे कि

'भगवन् ! इस जीवन में कोई ऐसा अपराध नहीं किया जिसका, यह घोर दंड हो, यदि पूर्व जीवन के कर्मों का फल है तो उसे भुगतना ही होगा। " इस वियोग का दुःख मृत्यु समय तक बना रहा और उन्हें इस मृत्यु ने अत्यंत आघात पहुंचाया था।

आपके कार्य में सम्पूर्ण योग देनेवाली आदर्श गृहणी श्रीमती माता यशोदादेवी जी का भी नाम आपके साथ-साथ अमर रहेगा। पंजाब में आपके प्रत्येक कार्य में प्रोत्साहित करने हारी सरल हृदया यशोदादेवी जी को कौन नहीं जानता। यदि पतिपत्नी में सहयोग न हो तो कोई भी कार्य सरलता से नहीं बनता। ईश्वर ने तो एक आदर्श जोड़ी बनाई। अछूत बालकों के साथ माता से भी अधिक प्यार दुलार करनेवाली भोलीभाली माताजी तो जगत्माता बनी। सारे भारत में, सुदूर आफ्रिका में और गुजरात के गाँव-गाँव में बाल, वृद्ध सब आपको माताजी ही मानता है और माताजी सम्बोधित करता है।

आप बडोदा राज्य की सेवा १८ वर्ष तक करते रहे, तत्पश्चात अपना कार्य अपने ज्येष्ठ पुत्र शांतिप्रिय जी को सुपुर्द कर आप निवृत्त हुए। निवृत्तिकाल में आपने अपनी सेवाएं गुरुकुल वृन्दावन तथा गुरुकुल सान्ताक्रुज को दीं। उनकी डगमगाती नाव को स्थिर पार लगा आपको चोटें लग जाने से फिर बडोदा आना पडा।

पं० महाराणीशंकरजी शर्मा ने वडोदे में एक कन्या-गुरुकुल-सरस्वती मंदिर खोला, उन्हें सहयोग सहायता देनेवाले आप एक थे। इसके पश्चात् वडोदा से थोडी दूर रेलवे स्टेशन इटोला ग्राम में एक कन्या-विद्यालय स्थापित किया, जिसके

अधिष्ठाता स्वामी धर्मानन्दजी थे और कुलपिता पंडित आत्मरामजी। यही कन्याविद्यालय कालान्तर में बडोदा नगर में लाया गया और आज आर्यसमाज की एक उजवल संस्था की भांति वह इसी विभूति की चिरस्थायी यादगार मौजूद है। आर्यकुमार-सम्मेलन के सभापति बने थे। १९२१ में आर्यकुमार महासभा की स्थापना बडोदे में हुई और उस के जन्म काल से आजतक आप उप-प्रमुख तथा ट्रस्टी रहे। महर्षि दयानन्द जी की परोपकारिणी सभा अजमेर के आप आजीवन सभासद रहे और अब आपके द्वितीय पुत्र आनन्दप्रियजी हैं।

श्रीमंत बडोदा नरेश के हीरक महोत्सव के समय अपने जीवनकाल में बहुत से लोकोपकारी कार्य किये। बडोदा राज्य का अभूतपूर्व मान सबसे वडा सन्मान उसी महोत्त्सव के समय राज्य के रत्न को अपना मित्र-राजमित्र वना कर महाराजा साहब ने गुणग्राहकता का उत्तम परिचय दिया। श्रीमद् जगद्गुरु शारदापीठाधीश शंकराचार्य आर्य धर्म महोपदेशक पंडितवर्य्य स्वामी श्री भारतीकृष्णतीर्थजी ने आपके रचित ग्रन्थों द्वारा आपकी वाचाशक्ति-विषयक प्रशंसा श्रवण कर आपको "व्याख्यान वाचस्पति" की उच्च उपाधि से विभूषित किया।

इस प्रकार से अपने जीवन के महत्त्व पूर्ण वीस वर्ष पंजाब की सेवा में और बाकी की सकल आयु गुजरात में विश्व-प्रेम की अमर गाथा को गाकर, अपने जीवन द्वारा जी कर, संसार को "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" का अमर पाठ पढ़ा गये और सन १९३८ की २५ जुलाई को इस जीवन की लीला समाप्त की। आपके जीवन की अनेक विशेषतायें हैं। संक्षिप्त में यहाँ इतना ही देते हैं।

भूमिका

मास नवेम्बर १९१९ में कलकत्ता तथा बम्बई के प्रसिद्ध दानवीर सेठ श्रीयुत रायबहादुर जुगलकिशोरजी बिरला, कैसरे हिन्द मैडलिस्ट, ने बड़ौदामें पधारकर अंत्यज बोर्डिङ्ग हौस बडोदाकी भेटली और छात्रों की उन्नति देखकर बहुत प्रसन्न हुए । आत्मारामजी इन्स्पेक्टर अंत्यज स्कूल बडोदा राज्यके निवेदन तथा परामर्ष पर उन्होंनें बडोदा राज्यके अंत्यज छात्रों के कल्याणार्थ **पन्द्रह सहस्र** रुपये दान दिये ।

उक्त महानुभाव सेठ साहबने इच्छा दर्शाई कि इस रकमके सूदसे **श्रीमंत महाराजा सयाजीराव गीता छात्र वृत्तियां** स्थापित की जावें, ताकि कलाभवन, हाईस्कूल आदिके अंत्यज छात्र लाभ ले सकें ।

उक्त शेठ साहेबकी सम्मत्यनुसार निम्नलिखित महाशयोंकी एक व्यवस्थापक समिति बनाई गई ताकि वह कार्यका ब्यौरा बनाकर उसको पूर्ण करती रहे ।

(१) नेक नामदार श्रीयुत मनुभाई नंदशंकर मेहता एम्. ए., एल एल. बी., सी. एस. आई **दीवान** बडोदा राज्य (प्रधान).

(२) ए. एन. दातार साहेब, बी. ए., एल. एल. बी., ए. एम., एकौन्टेन्ट जनरल बडोदा राज्य (मेम्बर.)

(३) ए. बी. क्लार्क साहेब, बी. ए. कमिशनर ऑफ एज्युकेशन बडोदा राज्य. (मेम्बर.)

(४) नन्दनाथ केदारनाथ दीक्षित साहेब बी. ए., एम. सी. पी. एज्युकेशनल इन्सपेक्टर बडोदा डिविजन (मेम्बर.)

(५) आत्माराम राधाकृष्ण पंडित इन्स्पेक्टर अंत्यज स्कूल्स बडोदा राज्य. (मेम्बर.)

परोपकारी सेठ साहेबने दृढतापूर्वक यह संकल्प दर्शाया कि, इन सर्व छात्र-वृत्तियोंके साथ **श्रीमंत महाराजा सयाजीराव गायकवाडका** प्रसिद्ध नाम होना चाहिये. कारण कि, जैसा कि सेठ साहेब के कथनानुसार " उक्त

बडोदा नरेश ही एक मात्र सर्व भारतवर्षमें **प्रथम महाराजा** हैं, जिन्होंने अंत्यज वालकोंके शिक्षण तथा सुधारका बीडा उठाया है" । उक्त समितिके प्रधान महानुभाव महोदयकी शुभ आज्ञानुसार, मैंने छात्र मंडलके हितार्थ गीता सम्बन्धी यह पाठ्यपुस्तक निर्माण करनेका यत्न किया है । इस कार्यमें पण्डित भवानन्दजी शर्मा तथा पं. मेधाव्रतजी शर्माने जो उत्तम सहायता ग्रन्थ रचनेमें मुझे दी उसके लिए मैं इनका उपकृत हूं । आशा है कि, यह **वालोपयोगी गीतासार** ईश्वर कृपासे उस पवित्र मनोरथको सिद्ध कर सकेगा जो दानवीर श्री शेठ विरलाजीका है ।

गीताके उपदेशामृत देनेवाले **श्रीकृष्णचन्द्र देवके** आर्ष जीवन पर जो कलङ्क मध्यकालीन इतिहासने लगाये थे उनको इस उत्तम प्रगति युगमें श्रीवङ्किमचन्द्र तथा ऋषि दयानन्द सरस्वतीने भली भांति दूर करके उनके उज्ज्वल यशको जगमें फैला दिया है ।

गीताका विषय निर्णय करना मानो एक समस्या खोलना था परन्तु वह समस्या लोकमान्य श्रीयुत पण्डित बाल गंगाधर तिलकके गीता रहस्यने यह कहकर खोल दी कि गीता कर्मयोगका ग्रन्थ है ।

अब यह दर्शाना जरूरी है कि मूल गीतामें अनुमानसे लगभग इतनेही श्लोक निकाल सकते हैं जितने कि हमने इस सारमें संग्रह किये हैं, इससे अधिक तो कभी नहीं हो सकते । इसका प्रवल कारण यह है कि जिस समय पर इसका उपदेश हुआ है वह एक बडे ग्रन्थके उपदेशका प्रसङ्ग नहीं हो सकता । यह बात नडियाद (गुजरात) के एक नामी पंडित श्री मणिभाई नभुभाई जीने भी अपने एक लेखमें अनुभवकी है ।

गीताके अनेक विषयोंमेंसे दोचार शब्द हमारे अप्रासङ्गिक न होंगे:—

१ साधारण लोग तो यह बात बडी कठिनतासे समझते हैं कि वर्णव्यवस्था का आधार गुण, कर्म और स्वभाव है । हर्षका विषय है कि लोकमान्यके

गीतारहस्यने इसी भावको पुष्ट किया है कि वर्णोंका आधार गुण, कर्मकी योग्यता पर था और होना चाहिये। जिस समय दो भाई आपसमें लडते हैं तो उस समय गुण, कर्म और स्वभावके कारणही एक मंडल तो अधर्मका पक्षपाती और दूसरा धर्मका पक्षपाती होनेसे मध्यम तथा उत्तम कोटिका परिचय देता है। दुर्योधनके अधर्मी होनेका कारण जन्म न था किन्तु उसके गुण, कर्म और स्वभाव थे।

२ महत्वाकांक्षा गीताका मर्म है और सच पूछिये तो यही सूत्र आज यूरोपने प्रगति और आत्मावलम्बनके रूपमें धारण कर रखा है।

३ सत् से असत् की उत्पत्ति नहीं होती यह तत्व मानो यूरोप के सायन्स और फिलासफी की आधार शिला बन रहा है।

४ आर्यपन, जिसकी तरफ श्रीकृष्णदेव अर्जुन को लगाना चाहते हैं वह स्वधर्म (Duty) पालने से ही प्राप्त होता है, शोक कि आज भारत में ऋषिसंतान अपना उच्च आर्य नाम ही भूल गई। **महर्षि दयानन्द सरस्वती और ज्ञानवीर श्रीयुत अरविन्द घोषने** इस आर्य शब्द के महत्व को अनुभव करके इसका प्रचार करना चाहा है। ईश्वर उनके यत्न सफल करे ऐसी प्रार्थना है।

५ गीता का एक और उपदेश समदर्शन है। आज लोग इसको केवल मन और वचन से पाल रहे हैं, किन्तु उसके साथ कर्म का योग नहीं करते यदि वह गीताका रहस्य कर्मयोग समझ लें तो फिर वह **श्रीमंत महाराजा सयाजीराव गायकवाड** तथा श्रीयुत **दानवीर सेठ जुगलकिशोरजी बिरला के समान** मन, वचन और कर्म से अन्त्यजोद्धारक बन कर सचमुच लोक में समदर्शन का दृष्टांत बन जायें।

६ हम—मूल गीता इतनी ही है जो इस **गीतासार** में आपके सम्मुख है—यह सिद्ध करने को तैयार हैं, कारण कि ३० वर्ष का मनन हमारा आधार

है। पर इससे कोई यह न समझे कि **मूल गीता का मूल स्वरूप श्लोक-बद्ध होगा, नहीं नहीं कदापि नहीं ।** श्रीकृष्णदेवजीने जो संवाद से कहा उसको श्रीमहर्षि व्यासदेवजीने श्लोकबद्ध कर दिया। वह श्लोक जहां तक हमारा अनुसंधान हमें सहायता देता है इतने ही श्लोक हो सकते हैं जो इस **गीतासार** में हैं। हां, यह संभव है कि कोई विद्वान् इन में से कोई एक दो श्लोक कम करने में सफल मनोरथ हो सके, पर इनसे अधिक भाव वा श्लोक सिद्ध करने की चेष्टा सफल इसलिए नहीं हो सकती कि गीता का उपदेश कथारूप से कई दिन किसी को नहीं किया गया, किन्तु युद्धक्षेत्र में युद्ध समय पर अल्प काल में ही स्वधर्म (Duty) कराने के हेतु से ही किया है। यह वडी भारी युक्ति है।

पंजाव के नामी महात्मा पण्डित गुरुदत्तजी, विद्वद्वर्य राजोपदेशक श्रीस्वामी नित्यानन्दजी सरस्वती तथा **विद्वद्वर्य राजोपदेशक श्रीस्वामी विश्वेश्वरानन्दजी, निरुक्तरत्न श्री पंडित जगन्नाथजी तथा कविवर श्री पंडित महाराणीशंकरजी शर्मा** इसी गुरु बातकी पुष्टि करते रहे एवम् कर रहे हैं।

७—जीवात्मा अमर है, आवागमन ठीक है। परमेश्वर एक महती ज्ञान शक्ति है। प्रकृति जड पदार्थ है, यह सब बातें इस उत्तमता से गीता में कही गई हैं कि जिज्ञासु वारवार इन श्लोकों को पढे विना नहीं रह सकता। यूरोप के भारी पण्डित भी इन श्लोकों की छटा पर ही मुग्ध नहीं किन्तु इनके भावों पर भी सचमुच लट्टू हो रहे हैं।

८—वैदिक वर्णाश्रम की मर्यादा की परम रक्षक **गीता** है। वैदिक काल में गुण, कर्म, स्वभाव (शील) के अनुसार Division of Labour के रूप में समाज रक्षा के लिये वर्ण थे, यह बात **गीता रहस्य** में इस उत्तमता से लोकमान्य तिलकजीने दर्शाई है कि जिसका वर्णन हम नहीं कर सकते। यहां

बात ४० वर्षों से **ऋषि दयानन्दजी** अपने **वेद भाष्य** तथा **सत्यार्थ प्रकाश** में लिख कर डंका वजा गये हैं। यही बात आजकल सुप्रसिद्ध **पंडित श्रीयुत भगवानदासजी** काशीनिवासी "स्वार्थ" नामक मासिक पत्र में प्रकाशित कर आर्य प्रजा का भारी उपकार कर रहे हैं। **श्रीमंत सयाजी-राव महाराजा बडोदा नरेश** इसी तत्व का प्रचार करा रहे हैं। इसी बात के प्रचारक सब समाज सुधारक हैं, जिनके नेता **महान् कवि श्रीरवीन्द्रनाथजी** तथा **श्री स्वामी विवेकानन्दजी** हैं।

ज्यूं-ज्यूं गीताका प्रचार अधिक होता जायगा त्यूं-त्यूं आर्य प्रजा इस प्राचीन तत्वको जीवनमें धारण कर सकेगी।

९—धर्मसे प्रेम भारतीय आर्य प्रजाका इतना है कि जिसका कोई वर्णन करही नहीं सकता। आर्य प्रजा आजकल धर्म शब्दके सच्चे अर्थ और उच्च भावको सर्वथा भूल गई है। ऋषि दयानन्द, लोकमान्य तिलक, पण्डित भगवानदास, अहमदावादवासी प्रोफेसर ध्रुव तथा रवीन्द्रनाथसे पण्डित शब्दके सच्चे अर्थ और सच्चे भाव जो दर्शा रहे हैं वही अर्थ और भाव गीतामें सबको लेने चाहिये। यथा—धर्मका पहिला अर्थ—

१ जो सबको धारण करे—जैसे कानून वा नियम।

२ जिसको सब धारण करें—जैसे कर्त्तव्य (Duty)

३ धर्मका लक्षण एक महर्षि कणादजीने यह किया है कि "यतोऽभ्युदय निःश्रेयसिद्धिः स धर्मः। अर्थात् जिससे अभ्युदय और मुक्ति प्राप्त हो वह धर्म है।"

एक स्थलपर पं. भगवानदासजीने क्या ठीक कहा है कि, इस समय हिन्दू समाज शौच आचारसे परे कोई धर्म नहीं मान रहा है।

विचार कर देखें तो प्रतीत होगा कि, आर्य प्रजा जो आजकल शौच धर्म पालन कर रही है वहभी **शास्त्रोक्त** वा **युक्तिसिद्ध** नहीं है। दृष्टांतकी रीति से हम कह सकत हैं कि, **जो मलिन हो उसको न छूना** यह शास्त्राज्ञा है,

और यह बात युक्ति सिद्धभी है। यदि एक उच्च जातिका मनुष्य मलिन शरीरसे हमारे पास आवे तो हमको–जब तक कि वह अस्पतालके डाक्टर समान मलीन है–इस से संपर्क नहीं करना होगा पर जब वह उक्त डाक्टर साहेबके समान शुद्ध होकर आवे तो सबको उससे छूना ठीकही है और इसी लिये सब ऐसा करते ही हैं।

युरोप आदि उन्नत देशोंमें भंगी आदिके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है अर्थात् जब तक भंगीका शरीर वा वस्त्र मलीन है तब तक उसको कोई नहीं छूता पर शुद्ध शरीर और शुद्ध वस्त्र धारण करके आता है तो यूरोपकी प्रजा बराबर छूती है।

हमारे देशमें तो व्यर्थ शब्दोंसे विचित्र घृणा है। यदि कोई ब्राह्मण कभी किसीको उपहाससे कह दे कि मैं भंगी हूं तो हिन्दू लोग 'भंगी' शब्द सुनतेहीं उससेही दूर भागेंगे। यह भारी भ्रम जब तक हिन्दू प्रजासे दूर नहीं होगा तब तक गीता के समदर्शन का यथार्थ भाव हमारे जीवन में नहीं आ सकता। भारत की आर्य प्रजा इस समय अनेक कुरीतियोंके कारण दुःखोंसे पीडित है। हिन्दू के घर तथा समाजमें सुख नहीं। जब तक गीता, मानवधर्म शास्त्र, उपनिषद् और वेद घर-घरमें लोग नहीं पढेंगे, तबतक पूर्ण सुखका हम मुख नहीं देख सकते। इन ग्रन्थोंके मर्मको जानने के लिये ग्राम-ग्राम और नगर-नगरमें जब तक हम **संस्कृत भाषा** आदि सीखने सिखानेके लिये उत्तम पाठशालाएं वा गुरुकुलें लडके-लडकियोंके लिये स्थापन नहीं करेंगे, तबतक हम दैवी आर्य संस्कृतिका उन्नतिप्रद स्वरूप नहीं जान सकते। इस लिये जरूरत है कि **संस्कृत भाषाका** भारी प्रचार देशभरमें अवश्य किया जाय। ईश्वर हमें संस्कृत प्रचारके लिये आत्मबल दे, यही मेरी प्रार्थना है।

बडोदा
ता. १ जनवरी १९२१

निवेदक–
आत्माराम राधाकृष्ण.

ओ३म्

बालोपयोगी गीता सार

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ (१) १ ॥

धृतराष्ट्र सञ्जयसे पूछते हैं:—हे सञ्जय! धर्मक्षेत्ररूपी कुरुक्षेत्रमें युद्धकी इच्छासे इकट्ठे हुए मेरे पुत्र (कौरव) तथा पाण्डव क्या कर रहे हैं? सो कहो—

ધૃતરાષ્ટ્ર સંજયને પૂછે છે:-હે સંજય ધર્મનાં સ્થાન સમાન કુરૂક્ષેત્ર નામનાં લડાઇનાં મેદાનમાં લડવાની ઇચ્છાથી એકઠા થયેલા મારા પુત્રો (કૌરવો) અને પાંડવો શું કરી રહ્યાં છે? તે કહો.

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

सञ्जय कहते हैं:—जिस समय राजा दुर्योधनने पाण्डवोंकी सेना व्यूह रचनामें व्यवस्थित हुई देखी उस समय वह द्रोणाचार्य के पास जाकर यह वचन बोला ।

સંજય કહે છે:—જેવખતે રાજા દુર્યોધને પાંડવોની સેનાનો વ્યૂહ-

રચનામાં બરાબર ગોઠવાએલી જોઇ તે વખતે તે દ્રોણાચાર્ય પાસેજઇ તે આ વચન બોલ્યો.

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महती चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

हे आचार्य ! आप पाण्डवोंकी इस वडी सेनाको देखिए जिसकी व्यूहरचना आपके वुद्धिमान् शिष्य द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्नने की है ।

હે ગુરૂ? પાંડવોની આ મ્હોટી સેનાને તમે જુઓ. વ્યૂહ રચના તમારા બુદ્ધિમાન શિષ્ય; દ્રુપદના પુત્ર ધૃષ્ટદ્યુમ્ને કરેલી છે.

अपर्याप्तं तदस्माकं वलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां वलं भीमाभिरक्षितम् ॥ ४ ॥

भीष्मपितामह द्वारा रक्षित यह हमारा सैन्य युद्धके लिये पर्याप्त नहीं है । परन्तु भीमद्वारा संचालित शत्रुसैन्य पर्याप्त है (अतः सावधानीकी आवश्यकता है) ।

ભીષ્મ પિતામહ દ્વારા રક્ષિત આપણું સૈન્ય યુધ્દ માટે પૂરતું નથી જ્યારે ભીમ દ્વારા સંચાલિત શત્રૂ સૈન્ય પૂરતું છે (અટલે સાવધાની ની જરૂર છે,

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ ५ ॥

उनको प्रसन्न करनेके लिये कौरवोंमें वृद्ध और प्रतापवान् भीष्मने सिंहगर्जना करके अपना शंख उच्च स्वरसे वजाया ।

તેને ખુશ કરવા માટે કૌરવોમાં વૃદ્ધ તથા પ્રતાપી એવા ભીષ્મે સિંહ ગર્જના કરીને પોતાનો શંખ ઉચ્ચ સ્વરથી વગાડયો.

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ ६ ॥

तत्पश्चात् श्वेत घोडोंसे जुडे हुए वडे रथमें विराजमान कृष्ण और अर्जुननेभी अद्भुत शंख प्रत्युत्तरमें वजाये ।

ત્યારબાદ ધોળા ઘોડાવાળા મ્હોટા રથમાં વિરાજમાન કૃષ્ણ અને અર્જુને પણ પોત પોતાના અદ્‌ભુત શંખો પ્રત્યુત્તરમાં વગાડયા.

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥ ७ ॥

अर्जुनने विरुद्ध पक्षमें जव अपने सव कुलवान्धवोंको युद्धतत्पर देखा तव खिन्न होकर अति दयार्द्र हृदयसे यह वचन कहा ।

જ્યારે અર્જુને સામા પક્ષમાં પોતાના સઘળા કુટુમ્બીજનોને લડાઇ લડવાને તૈયાર ઉભેલા જોયા તો ખિન્ન થઇને અતિ દયાળુ દિલે તેણે આ પ્રમાણે કહ્યું.

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ८ ॥

अहो ! शोकका विषय है कि हम महापाप करनेके यत्नमें लगे हुए हैं क्योंकि राज्यसुखके लोभसे अपने भाई बन्धुओंको मारनेके लिये उद्यत हुए हैं ।

અરે ! ખેદની વાત છે કે અમે મહાપાપ કરવા મંડી પડયા છીએ કેમકે રાજ્યસુખના લોભને લઈને પોતાનાં ભાઈ બંધુઓને મારવા તૈયાર થયા છીએ !!

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ९ ॥

संजय बोले:—शोकसे व्याकुल चित्तवाला अर्जुन यूं कहकर बाणसहित धनुषको रणभूमिमें छोडके रथमें बैठ गया ।

સંજય બોલ્યા:—દુ:ખથી વ્યાકુળ ચિત્તવાળો અર્જુન એમ કહીને બાણસહિત ધનુષ્યને રણભૂમિમાં ફેંકી દઈને રથમાં બેસી ગયો.

कृष्ण उवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ (२) १० ॥

कृष्ण कहते हैं:—हे अर्जुन ! इस संकटके अवसर पर तेरे मनमें यह मोह कहांसे आ गया ! जिसका कि आर्यपुरुषोंने

कभी सेवन नहीं किया, जो अधोगतिको पहुंचानेवाला है तथ अपयश करनेवाला है ।

કૃષ્ણ કહે છેઃ—હે અર્જુન! લડાઇના આવા કટોકટીના પ્રસંગે તને આ પાપ ક્યાંથી નડયું? જેને અનાર્ય—મૂઢ લોકો સેવે છે, જે અધોગતિએ લઈ જનારૂં તથા એ આબરૂ કરનારૂં છે.

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! भीरु मत हो, यह तुझे शोभा नहीं देता है । परंतप ! हृदयकी इस तुच्छ दुर्बलताको हटाकर उठ खडा हो ।

હે અર્જુન! તુ બ્હીકણ ન થા. એ તને છાજતું નથી હે પરંતપ! (શત્રુને તપાવનારા) હૃદયની આવી ક્ષુદ્ર નિર્બળતાને હટાવીને ઊભો થઈ જા.

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ १२ ॥

जिसका शोक नहीं करना चाहिये तू उसका तो शोक कर रहा है और फिर पंडिताईकी वातें करता है । परंतु जो पण्डित होते हैं वह प्राणवियुक्त और प्राणयुक्त ऐसे देहोंके लिये शोक नहीं किया करते ।

જેનો શોક નહિ કરવો જોઇએ તેનો તું શોક કરે છે અને વળી પંડિતાઇ બતાવે છે. પણ પંડિતો પ્રાણ વિનાનાં કે પ્રાણવાળાં શરીરોના સંબંધમાં શોક કર્યા કરતા નથી.

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १३ ॥

ऐसा तो है ही नहीं कि मैं पहिले कभी नहीं था । तू और ये राजालोग पहिले नहीं थे ऐसाभी नहीं, और ऐसाभी नहीं हो सकता कि हम सब अब आगे न होंगे ।

(આ જન્મ) પહેલાં કોઈ પણ વખતે હું જીવિત નહોતો એવું નથી, તેમજ તું કે આ રાજાઓ નહોતા એવું પણ નથી વળી હવે (મરણ) પછી આપણે બધા નહિ હોઈએ એમ પણ થવાનું નથી.

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १४ ॥

जिस प्रकार देह धारण करनेवाले को इस देहमें बालकपन, जवानी और बुढापा प्राप्त होता है उसी प्रकार दूसरी देहकी प्राप्ति होती है । ज्ञानी पुरुषोंको वहां (इससे) मोह नहीं होता ।

આ શરીરમાં રહેલા જીવાત્માને જેમ બાળકપણું, જુવાની તથા ઘડપણ એમ એક પછી એક અવસ્થા આવે છે, તેમ મરણ બાદ ફરીને બીજાં શરીરોની પ્રપ્તિ થાય છે. આમ હોવાથી જ્ઞાની મનુષ્ય વારંવાર બદલાતાં શરીરોમાં તથા તેની અવસ્થામાં મોહ પામતા નથી.

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १५ ॥

जो नहीं है वह हो नहीं सकता और जो है उसका नाश नहीं होता । इस तरह तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने सत् और असत्का तत्त्व जान लिया है ।

અસત્ એટલે કે જે વસ્તુનો અસ્તિત્વ નથી તેનો ભાવ એટલે હોવાપણું સંભવતુંજ નથી, અને સત્ એટલે જે વસ્તુ છે તેનો અભાવ એટલે નાશ પણ થવાનોજ નથી. આ રીતે તત્વજ્ઞાની પુરૂષોએ સત્ તથા અસત્ એ બંનેનો ઠીક નિર્ણય કરી નાખ્યો છે.

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १६ ॥

(जैसे इस युद्धक्षेत्रमें वैसे अन्यत्र भी) प्रपञ्च व्यवहारमें जिससे यह सारा संसार चक्र फैलाया गया है उस आत्म तत्त्वको तू नाश न होनेवाला जान । कभी न छीजनेवाले इस जीवात्माका नाश करनेकी शक्ति कोईभी नहीं रखता है ।

જે વસ્તુ નું અસ્તિત્ત્વજ નથી તેનો ભાવ એટલે હોવા પણ સંભવતુંજ નથી, એટલે તે અસત્ છે; અને સત્ એટલે જે વસ્તુ છે તેનો અભાવ એટલે નાશ પણ થવાનોજ નથી. આ રીતે તત્વજ્ઞાની પુરૂષો એ સત્ અને અસત્ એ બન્નેનો ઠીક નિર્ણય કરી રાખ્યો છે.

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्धयस्व भारत ॥ १७॥

शरीर में रहे हुए इस नित्य, नाश रहित और अमित आत्मा के इन शरीरों को ही नाशवन्त कहा गया है; इसलिये हे अर्जुन ! तू युद्ध कर ।

શરીરમાં રહેલા એ નિત્ય, નાશરહિત અને અમાપ એવા આત્માનાં આ શરીરોનેજ અંતવાળાં કહેલાં છે. માટે હે અર્જુન ! તું યુદ્ધ કર.

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१८॥

यह जीवात्मा न कभी पैदा हुआ और न कभी मरेगा । यह होकर फिर न होगा यही नहीं किन्तु सदैव रेहगा । वह अजन्मा है, नित्य है, निरन्तर और सनातन है । शरीर का हनन करनेसे उसका हनन नहीं होता ।

આ જીવાત્મા કદિપણ પેદા થતો નથી કે મરતો નથી. તેમજ તે થઇને ફરી ન થશે એમ પણ નથી. તેમજ એટલે અનાદી, નિત્ય એટલે અનંત શાશ્વત એટલે નિરંતર અને પુરાણ એટલે પુરાતન છે, તેથી કરીને શરીરનાં હણાવાથી તે હણાતો નથી.

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानिदेही॥१९॥

जिस तरह कोई मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नयें ग्रहण करता है उसी तरह शरीर का मालिक आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण करता है ।

જેવી રીતે માણુસ જુનાં કપડાં ઉતારીને બીજા નવા કપડાં પહેરે છે તેવી રીતે શરીરના માલીક જીવાત્મા પણ જુના શરીરોને છોડતો જાય છે અને નવાં શરીરોને ધારણુ કરતો જાય છે.

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२०॥

इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, इसे आग जला नहीं सकती; वैसे ही इसे पानी भिगो या गला नहीं सकता और वायु सुखा भी नहीं सकती है ।

આ આત્માને હથિયારો કાપી શકતા નથી, આગ બાળી શકતી નથી, પાણી ભીંજવી શકતું નથી અને પવન સુકાવી શકતો નથી.

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽय मुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥२१॥

यह अतिसूक्ष्म होनेसे अव्यक्त, विचार में न आनेसे अचिन्त्य एवं विकार रहित कहाता है, इसलिये जीवात्मा को इस प्रकार का समझ कर उसका शोक करना तुझे उचित नहीं ।

આ આત્મા અવ્યક્ત એટલે ઇન્દ્રિયોથી ન જાણી શકાય તેવો અત્યંત સૂક્ષ્મ છે અચિંત્ય એટલે કલ્પનામાં ન આવી શકે તેવો અને વિકાર વગરનો છે. તેટલા માટે એને એવો જાણવા છતાં તારે તેનો શોક કરવો ન જોઇએ.

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २२ ॥

अगर तू ऐसा मानता है कि यह आत्मा सदा जन्म लेता या सदा मरता रहता है तो भी हे महाबाहो! इसका शोक करना तुझे उचित नहीं ।

કદાચ તારી એવી માન્યતા હોય કે આ આત્મા નિત્ય જન્મતો ને મરતો રહે છે તોપણ હે મહાબાહો! (મ્હોટા હાથવાળા) તારે તેનો શોક નહિ કરવો જોઇએ.

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २३ ॥

जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित हैं और जो मरता है उसका जन्म निश्चित है; इसलिए न मिटनेवाले अर्थमें तुझे शोक करना उचित नहीं है ।

જે જન્મે છે તેનું મરણ અવશ્ય થાય છે અને જે મરે છે તેનો જન્મ પણ જરૂર થાય છે, માટે એ ન ટાળી શકાય તેવી વિષયે શોક કરવો તને ઘટે નહિ.

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! मनुष्यादिक भूतप्राणी जन्मके आदिमें प्रकट न थे, मध्य अवस्थामें प्रकट दीखते हैं और फिर मरनेके पीछे नहीं दीखते तो इसमें शोक किस बातका ?

હે અર્જુન! મનુષ્ય વગેરે આ પ્રાણીઓ જન્મની પહેલાં નથી દેખાતાં જન્મથી મરણ વચલા કાળમાં દેખાય છે, અને ફરી પાછા મરણ બાદ દેખાતાં બંધ થાય છે (પણ કોઇ પૂર્ણતયા અભાવનાશને પામતું નથી.) તો પછી તેનો શોક શા માટે કરવો?

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

हे अर्जुन ! सबके शरीरोंमें रहनेवाले यह आत्मा सदैव

नाश रहित है अतएव किसी भी प्राणीके लिये शोक करना उचित नहीं ।

હે અર્જુન! સર્વના શરીરમાં રહેલો આ જીવાત્મા સદા અવધ્ય એટલે ન હણી શકાય તેવો છે, તેટલા માટે કોઇ પણ પ્રાણીને માટે શોક કરવો તને ઘટતો નથી.

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ २८ ॥

स्वकर्तव्यको देखें तो भी उत्साह छोडना तुझे उचित नहीं. क्योंकि क्षत्रियोंको धर्मोचित युद्धकी अपेक्षा और कोई कल्याण नहीं ।

વળી સ્વધર્મ એટલે તારા પોતાના સ્વાભાવિક વર્ણનું કર્મ, તેનો વિચાર કરતાં પણ યુદ્ધથી ડગવું તને છાજતું નથી; કેમ કે ક્ષત્રિય વર્ણને માટે ધર્માર્થ યુદ્ધના કરતાં વધારે કલ્યાણકારી બીજું કર્મ નથી.

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥२७॥

हे अर्जुन! यह युद्ध अपने आप खुला हुवा स्वर्गका द्वार ही है । ऐसा युद्ध भाग्यवान क्षत्रियोंको ही मिला करता है ।

હે અર્જુન પોતાની મેળે આવી મળેલું આવું યુદ્ધ માનો સ્વર્ગસુખનો ઉઘડેલું દ્વાર છે. ભાગ્યશાળી ક્ષત્રિયોનેજ આવાં યુદ્ધ લડવા મળે છે.

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥२८॥

यदि तू अपने कर्तव्य के अनुकूल यह युद्ध न करेगा तो स्वधर्म और कीर्तिको खोकर पाप वटोरेगा ;

એમ છતાં જો તું તારા ક્ષત્રિય ધર્મને અનુકૂળ આ યુદ્ધ નહિ લડીશ તો સ્વધર્મ અને કીર્તિને ખોઇને પાપી બનીશ.

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥२९॥

यही नहीं किंतु सव लोग तेरा अखण्ड अपयश गाते रहेंगे, और अपयश तो प्रतिष्ठित पुरुषके लिए मरनेसे वढकर है।

વળી સઘળા લોકો તારી નિરંતર અપકીર્તિ ગાતા રહેશે. પ્રતિષ્ઠિત પુરુષને માટે તો એવી અપકીર્તિ કરતાં મરવું વધારે સારૂં.

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ट कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३० ॥

ऐसा है तो फिर जो तू युद्धमें मारा जायगा तो स्वर्गको जावेगा और जीतेगा तो पृथ्वीका राज्य भोगेगा इसलिये हे अर्जुन ! युद्धका निश्चय करके उठ ।

આમ છે તો પછી જો તું યુધ્ધમાં હણાઇશ તો સ્વર્ગમાં જઇશ અને

જીતીશ તો પૃથ્વીનું રાજ્ય ભોગવીશ. માટે હે કૌન્તેય ! (કુન્તીના પુત્ર) યુદ્ધ કરવાના નિશ્ચયથી ઊભો થા.

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३१ ॥

सुख दुःख, हानि लाभ और हार जीतको एकसा मानकर फिर युद्धमें लगजा । ऐसा करने से तुझे कोई भी पाप लगनेका नहीं है ।

સુખ દુઃખ, નફો, નુકશાન તથા હારજીત એ સઘળાંને સરખાં ગણીને યુદ્ધમાં જોડાઇ જા. આવી વૃત્તિ રાખવાથી તને પાપ લાગશે નહીં.

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखाह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥३२॥ *

हे अर्जुन ! इस जीवनयात्रामें धर्मपथपर चलानेवाली निश्चयात्मिका बुद्धि एकही होती है परंतु जिनमें टेकही नहीं है ऐसे मनुष्योंकी बुद्धियाँ अनेक शाखाओंवाली तथा अनन्त होती हैं ।

હે અર્જુન આ જીવન યાત્રામાં ધર્મ પથ ઉપર ચલાવનાર નિશ્ચયાત્મક બુધ્દિ એકજ હોય છે; પરંતુ જેઓમાં નિશ્ચયાત્મક બુદ્ધિ (ટેક) નથી એવા માણસોની બુદ્ધિ અનેક વાળી અને અનન્ત હોય છે.

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ ३३ ॥

कर्तव्यमें ही तेरा अधिकार है फलमें कभी नहीं, तू कर्म के फलका उद्देश न रख और कर्तव्य कर्मसे रहित होनेकी इच्छा भी न रख ।

તને કર્તવ્ય બજાવવાનોજ અધિકાર છે. પ્રતિફળ મેળવવાનો કદિ નહિ કર્મનો પ્રતિફળ મેળવવાનો ઉદ્દેશ તુ ન રાખ, તેમજ પુરૂષાર્થને છોડી દેવાની ઇચ્છા પણ ન રાખ.

श्रुति विप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥३४॥*

कर्मफलोंको सुन सुनकर चंचल हुई तेरी बुद्धि जब ज्ञानमें स्थिर होगी तब तू ठीक अवस्थाको प्राप्त होगा ।

કર્મનાં ફળોને સાંભળી સાંભળીને ચલિત થયેલી તારી બુધ્ધિ જ્યારે જ્ઞાનમાં સ્થિર થશે ત્યારે તું યોગ્ય અવસ્થાને પામીશ.

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥३५॥

हे पार्थ ! जब मनुष्य अपने मनमें उत्पन्न होनेवाली सभी कामनाओंको त्याग देता है और अपने आत्मस्वरूपको समझकर अपनी आत्माकी सभी शक्तियोंसे तल्लीन होकर उसीमें संतुष्ट होता है तब स्थिर बुद्धिवाला कहाता है ॥

હે પાર્થ, જ્યારે મનુષ્ય પોતાના મનમાં ઉત્પન્ન થનારી કામનાઓને

ત્યાગી દે છે અને પોતાના આત્મસ્વરૂપ ને સમજી પોતાના આત્માની સર્વ શક્તિઓમાં રચીપચી તલ્લીન થઈ જાય છે ત્યારેજ તે બુદ્ધિવાળો કહેવડાય છે.

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ३६ ॥ ॐ

दुःखोंमें जिसका मन उद्विग्न नहीं होता, सुखोंमें जिसको, सुखोंमें आकर्षण नहीं, राग, भय और क्रोध जिसके स्वभावसे निकल गये हों ऐसा समझदार मनुष्य स्थिर बुद्धि वाला कहाता है ॥

દુઃખોમાં જેનું મન ઉદ્વિગ્ન નથી થતું, સુખી હાલતમાં સુખ નું આકર્ષણ નથી અનુભવતો, રાગ, ભય અને ક્રોધ જેના સ્વભાવથી દૂર થઇ ચુક્યા છે એવો સમજુ માણસ સ્થિર બુદ્ધિ વાળો ગણાય છે.

यःसर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभं ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ३७ ॥ ॐ

जो सर्वत्र स्नेहरहित होकर, भौतिक लाभालाभको प्राप्त करके न आनन्द मानता है ना ही द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर प्रतिष्ठित अर्थात् स्थिर है ।

જે બધી રીતે મોહમાયા મુકીને ભૌતિક નફા નુકસાનથી આનન્દ કે દ્વેષ નથી કરતો તેની બુદ્ધિ પ્રતિષ્ઠિત અથવા સ્થિર છે.

यदा संहरते चायंकूर्मोऽङ्ग नीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ३८ ॥ ॐ

जैसे कछवा अपने अंगों को सब ओरसे खींच लेता है वैसेही जब वह साधक अपने इन्द्रियोंको संयमद्वारा उनके विषयोंसे खींचकर वशमें कर लेता है तब इसकी बुद्धि प्रतिष्ठित अर्थात् स्थिर होती है।

જેવી રીતે કાચબો પોતાના શરીરના બધા ભાગો ખેંચી લે છે તેવીજ રીતે તે સાધક જેણે પોતાની ઇન્દ્રિયોને સંયમ દ્વારા તેમના વિષયોથી દુર કરી વશમાં કરી લીધી છે તેની બુદ્ધિ સ્થિર થાય છે.

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥३९॥

अस्थिर चित्तवाले मनुष्यकी बुद्धि ठिकाने नहीं होती, और न ऐसे अस्थिर मनुष्यकी उच्च भावना ही होती है। भावना रहित मनुष्यको शान्ति नहीं मिलती और जिसको शान्ति नहीं उसको सुख कहां?

અસ્થિર ચિત્તવાળા મનુષ્યની બુધિ ઠેકાણે હોતી નથી. તથા એવા અસ્થિર મનુષ્યને ઊંચી ભાવના પણ થતી નથી. ભાવના રહિત મનુષ્યને શાન્તિ મળતી નથી અને જેને શાન્તિ નથી તેને સુખ ક્યાંથી?

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥(३)४०॥

अर्जुन पूछता है:—हे कृष्ण ! यदि आप कर्मोंकी अपेक्षा ज्ञान बुद्धिको ही श्रेष्ठ मानते हो तो फिर इस युद्धरूपी घोर कर्ममें मुझे क्यों नियुक्त करते हो ?

અર્જુન પુછે છે:—હે કૃષ્ણ ! તમે જો કર્મોના કરતાં નિષ્કામતાજ્ઞાન બુધ્ધિનેજ શ્રેષ્ઠ માનો છો તો પછી આ યુદ્ધ રૂપી ઘોર કર્મમાં મને શા માટે જોડો છો ?

कृष्ण उवाच

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च सैन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥४१॥

विना कर्म किये पुरुष निष्कर्मताको नहीं पा सकता, और न सब कर्मोंको छोड देनेसे ही सिद्धिको प्राप्त हो सकता है ।

કર્મ કર્યા વિના કોઇ માણસ નિષ્કર્મ ભાવને પામી શકતો નથી. તેમ બધાં કામકાજોને છોડી દેવા માત્રથી પણ સિદ્ધિ મળતી નથી.

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥४२॥

कोई मनुष्य एक क्षणभी विना कर्म किए नहीं रह सकता क्योंकि अपने-अपने स्वभावसे उत्पन्न हुए गुणही सब प्राणियोंको वलात् कर्म कराते हैं ।

કોઇ પણ માણસ ક્ષણવાર પણ કર્મ કર્યા વિના રહી શકતો નથી.

કેમ કે પોતે પોતાના સ્વભાવથી પેદા થએલા ગુણો સઘળાં પ્રાણિઓને પરાણે કર્મ કરાવે છે.

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ॥४३॥

इसलिए क्षात्रधर्मानुकूल तेरा नियत कर्म तू किया कर। कर्म नहीं करने की अपेक्षा कर्म करना अच्छा है कर्म रहित होनेसे तो तेरा शरीरका हिलना चलना भी नहीं हो सकता।

એટલા માટે ક્ષાત્ર ધર્મને અનુસરીને તારે માટે નિર્માણ થએલું કર્મ તું કર્યાં કર. કર્મ ન કરવાં કરતાં કર્મ કરવું ઘણું સારૂં છે કર્મ રહિત થવાથી તો તારાં શરીરનું હલન ચલન પણ થઇ શકશે નહિ.

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ ४४ ॥

जनकादि सिद्ध पुरुष कर्मोंसे ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं. लोगोंके हितकी ओर देखकर भी तुझे कर्तव्य कर्म करना चाहिए।

જનક વગૈરે સિદ્ધ પુરૂષો કર્મો કરીનેજ સિધ્ધિને પામ્યા છે. વળી લોકોનાં હિતની તરફ જોઇને પણ ત્યારે કર્તવ્ય કર્મો કરવાંજ જોઇએ.

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ ४५ ॥

श्रेष्ठ पुरुष जो कुछ करता है उसको सर्व साधारण मनुष्य भी किया करते हैं। वह जिसे प्रमाण मानकर अंगीकार करता है लोग उसीका अनुकरण करते हैं।

શ્રેષ્ઠ પુરૂષો જે પ્રમાણે આચરણ કરે છે તેને જોઇને બીજા મનુષ્યો પણ કરે છે અને તેઓ જે વાતને ખરી માનીને વર્તે છે લોકો પણ તેઓની પાછળ તેજ પ્રમાણે વર્તે છે.

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥४६॥

दूसरे का कर्तव्य भले प्रकार अनुष्ठान किया गया भी हो उससे अपना कर्तव्य साधारण गुणोंवाला भी श्रेष्ठ होता है। अपने कर्तव्य करते हुए मरजाना भी श्रेष्ठ है और अनधिकार चेष्टा अर्थात् दूसरेका कर्तव्य भय देने वाला होता है।

સારાં દેખાતાં બીજાનાં વર્ણ–અધિકારનાં ધર્મકર્મો કરતાં ઉતરતાં દેખતાં પોતાનાં અધિકારસિદ્ધ કર્તવ્ય વધારે કલ્યાણકારી નિવડે છે; અને એટલા માટે પોતાની પહોંચની કર્તવ્યોમાં આરુઢ રહીને મરવું પણ સારૂં જ્યારે અનધિકાર ચેષ્ટા એટલે પરાયા અધિકારનાં કર્તવ્યો જોખમકારક નિવડે છે.

यस्य सर्वे समारंभाः काम संकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः (४) ॥४७॥

जिसके सब प्रारंभ किए हुए कर्म कामना रूपी संकल्पसे

वर्जित हैं और ज्ञानरूपी अग्निसे जिसके कर्म दग्ध हो गए हैं उसको वुद्धिमान् लोग पंडित कहते हैं ।

જે પુરૂષનાં સઘળાં આરંભેલા કર્મો કામના રૂપી સંકલ્પથી રહિત અને જ્ઞાન રુપ અગ્નિ વડે જેનાં કર્મો બળી ગયાં છે તેને બુધ્દિમાનો પંડિત કહે છે.

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः (५) ॥४८॥

ऐसे पंडित, विद्या और नीति विशेषसे जो ब्राह्मण संपन्न है उसमें तथा गाय, हाथी, कुत्ता और चाण्डालमें भी समदृष्टि-वाले होते हैं ।

એવા પંડિતો, વિદ્યા તથા વિનયવાળાં બ્રાહ્મણમાં, ગાયમાં, હાથીમાં, કુતરામાં તથા ચાંડાળમાં પણ સમદ્દષ્ટિવાળા હોય છે. (અર્થાત્ ઉંચી નીચી સર્વ જાતિ તરફ સરખો સંભવ રાખે છે.)

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः (६) ॥४६॥

अपना उद्धार अपने आप ही करे, अपने आपको कभी भी गिरने न दे क्योंकि प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपना सहायक तथा स्वयं अपना शत्रु है ।

માણુસ પોતાની મેળેજ પોતાનો ઉદ્ધાર કરે. કદિ પણ આત્મશ્રદ્ધાનો નાશ ન કરે; કેમ કે માણુસનો આત્માજ તેનો બંધુ છે તથા એ આત્માજ

તેનો શત્રુ છે.

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥५०॥

जिसने अपने आपको जीत लिया है उस पुरुषका आत्मा निश्चयसे अपने आपका मित्र है, परंतु जिसने अपने आपको नहीं जीता है उसके सामने अपना आत्मा ही शत्रु के समान वर्तता है।

જે માણસે પોતે પોતાના પર કાબુ મેળવી લીધો છે તે માણસનો આત્મા જરૂર તેનો મિત્ર છે. પણ જેણે પોતાના પર કાબુ નથી મેળવ્યો તેની સામે તેનોજ આત્મા શત્રુની માફક વર્તે છે. [અર્થાત્ પોતેજ પોતાના શત્રુની ગરજ સારે છે.]

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥५१॥

हे अर्जुन ! इस जन्म में भी आत्मोद्धारक पुरुषका नाश नहीं होता । शुभ कार्य करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्दशाको प्राप्त नहीं होता ।

હે અર્જુન ! આ જન્મમાં તથા પરજન્મમાં પણ આત્મોદ્ધારક મનુષ્યનો નાશ થતો નથી. પુણ્ય કર્મનો કરવાવાળો કોઇપણ મનુષ્ય દુર્દશાને પામતો નથી.

अर्जुन उवाच ।

किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।

अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते (८)॥५२॥

हे कृष्णे ! वह ब्रह्म किस लक्षणवाला है ? वह अध्यात्म क्या है ? और कर्म क्या है ? अधिभूत किसको कहा गया है और अधिदेव किसको कहा है ?

હે પુરુષોત્તમ કૃષ્ણ ? તે બ્રહ્મ કેવા લક્ષણવાળું છે ? અધ્યાત્મ શું છે ? અને કર્મ શું છે ? અધિભૂત તે શું અને અધિદેવ કોને કહે છે ?

कृष्ण उवाच ।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ५३ ॥

जो अक्षर अर्थात् नाशरहित और सबसे श्रेष्ठ तत्त्व है वह ब्रह्म है। उसका स्वभाव वह अध्यात्म कहा जाता है और भूतों को उत्पन्न करनेकी और नाश करनेकी उसकी जो शक्ति वह कर्महै।

જે અક્ષર એટલે નાશ રહિત અને સૌથી શ્રેષ્ટ તત્વ છે તે બ્રહ્મ છે તેનો સ્વભાવ તે અધ્યાત્મ કહેવાય છે, અને ભૂતને ઉત્પન્ન કરવાની તથા નાશ કરવાની તેની જે ક્રિયા તેનું નામ કર્મ કહેવાય છે.

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥५४॥

जो मनुष्य उस सर्वज्ञ, अनादि, सबको नियममें रखनेवाला परमाणु आदिकोंसे भी सूक्ष्म, सबका धारण करनेवाला, कल्पनामें

न आनेवाला, सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप और अज्ञानरूपी अन्धकारसे परे ऐसे ब्रह्मका स्मरण करता है वह मनुष्य उस परम-स्वरूपको प्राप्त होता है।

જે મનુષ્ય તે સર્વજ્ઞ, અનાદિ, સર્વના નિયંતા, પરમાણું આદિથી પણ સૂક્ષ્મ, સર્વને ધારણ કરનાર, કલ્પનામાં ન આવે એવા સૂર્યની માફક જ્ઞાનપ્રકાશ તથા અજ્ઞાનરૂપી અંધકારથી પરે એવા બ્રહ્મનું સ્મરણ કરે છે તે મનુષ્ય તેના પરમ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત થાય છે.

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥५५॥

हे अर्जुन। वह परम पुरुष (व्यापक शक्ति) अनन्य भक्तिसे मिलता है। जिसके भीतर सब भूत प्राणी रहे हुए हैं और जिसने इस सारे ब्रह्मांड को विस्तृत किया है।

હે અર્જુન! જેની અંદર સર્વભૂત પ્રાણીઓ રહેલા છે તથા જેણે આ અખિલ બ્રહ્માંડને વિસ્તાર્યું છે તે પરમ પુરૂષને અનન્ય ભક્તિથી પમાય છે.

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमांल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति (१३) ॥५६॥

वह ब्रह्म सब प्रकारके हस्तपाद अर्थात् क्रियाशक्तिवाला सब प्रकारके चक्षु, शिर और मुख अर्थात् ज्ञानशक्तिवाला सब प्रकारके सुननेकी अर्थात् मनीषीपनकी शक्तिवाला और वह इस लोकमें सबको व्याप्त करके स्थिर हो रहा है।

(સર્વવ્યાપક તથા સર્વશક્તિમાન હોવાથી) તે બ્રહ્મને સઘળી તરફ અનંત હાથ પગ અર્થાત્ ક્રિયા શક્તિ છે સઘળી તરફ આંખ, માથાં અને મુખ અર્થાત્ જ્ઞાન શક્તિ છે, સઘળી તરફ કાનની અર્થાત્ મનીષીપણાની શક્તિ છે અને આ જગતમાં સર્વને વ્યાપીને રહેલો છે.

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।।५७।।

वह ब्रह्म सब इन्द्रियोंके स्वभावोंके प्रकट करनेवाला है तदपि स्वयं इन्द्रियोंसे सर्वथा रहित है। आसक्तिसे रहित होत हुआ सब भूतोंका पोषण करनेवाला है, तथा प्रकृति आदिके जड गुणोंसे रहित–निर्गुण होता हुआ सच्चिदानंदादि अपने चेतन गुणोंका भोक्ता है।

તે બ્રહ્મ સર્વ ઇન્દ્રિયોના સ્વભાવોને પ્રગટ કરવવાવાળો હોવા છતાં પોતે સઘળી ઇન્દ્રિયોથી રહિત છે. કોઇપણ જાતની આસક્તિ–ભોગ રહિત હોવા છતાં સર્વ ભૂતપ્રાણીઓનું પોષણ કરવાવાળો છે તથા નિર્ગુણ એટલે પ્રકૃતિ આદિના જડ ગુણોથી રહિત હોવા છતાં પોતાના સચ્ચિદાનંદાદિ ચેતન ગુણોનો ભોકતા છે.

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ।।५८।।

वह ब्रह्म स्थावर और जंगम सब भूतप्राणियोंके बाहर और भीतर है, स्थिर और सर्वत्र गति शक्तिमान् भी है तथा सूक्ष्म होनेसे वह अविज्ञेय, दूर है परंतु ज्ञानसे उपलब्ध होनेसे वह

सबके समीप भी है ।

તે બ્રહ્મ સ્થાવર અને જંગમ સર્વ ભૂત પ્રાણીઓની બહાર તથા અંદર પણ છે, સ્થિર પણ છે તેમ સર્વત્ર ગતિ શકિતમાન પણ છે, સૂક્ષ્મ હોવાથી તે ન જાણી શકાય તેવો અને તેથી દુર છે પણ જ્ઞાનથી પ્રાપ્ત થતો હોવાથી તે પાસે પણ છે.

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥५९॥

वह ब्रह्म सूर्यचन्द्रादि ज्योतियोंका अर्थात् प्रकाशक, अज्ञान रूप अंधकारसे परे, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानसे जानने योग्य और सब प्राणियोंके हृदयमें स्थिर है ।

તે બ્રહ્મ સુર્યચન્દ્રાદિ નક્ષત્રોને પણ પ્રકાશ આપનાર તથા અજ્ઞાન અંધકારથી પરે કહેવાય છે. વળી તે જ્ઞાનરૂપ, જાણવા યોગ્ય તથા જ્ઞાનથી જાણી શકાય તેવો તેમ સર્વ પ્રાણીઓના હૃદયમાં વિરાજમાન છે.

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥६०॥

प्रकृति तथा जीवात्मा इन दोनोंको भी अनादि जान, परिणामादि विकार तथा सत्त्वादि गुण इनको प्रकृतिसे उत्पन्न हुए जान।

જેમ બ્રહ્મ અનાદિ છે તેમ પ્રકૃતિ તથા જીવાત્મા એ બંનેને પણ તું અનાદિ જાણ પરિણામાદિ વિકારો તથા સત્ત્વ, રજસ, તમસ આદિ ગુણો પ્રકૃતિથી ઉત્પન્ન થયેલા જાણ,

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥६१॥

यह जगत् और शरीररूपी कार्य तथा मन सहित इन्द्रिय वर्ग इनके करनेमें प्रकृति उपादान कारण कही गयी है और जीवात्मा सुखःदुख के भोगने में हेतु कथन किया गया है ।

આ જગત અને શરીર રૂપી કાર્ય તથા મન સહિત ઇન્દ્રિયો તેને કરાવવામાં પ્રકૃતિ ઉપાદાન કારણ તરીકે કહેવાય છે અને સુખ દુઃખને ભોગવનારે જીવાત્મા કહેવાય છે.

पुरुष प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥६२॥

प्रकृति में स्थिर होकर यह जीवरूप पुरुष ही प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों को भोगता है । इस जीवात्मा का जों प्रकृति के गुणों के साथ संवन्ध है वह ऊंच नीच योनियों में जन्म पाने में कारण है ।

પ્રકૃતિમાં રહેલો આ જીવ રૂપ પુરૂષજ પ્રકૃતિથી પેદા થયેલા સારા નરસા ગુણોને ભોગવે છે, અને સારી નરસી યોનિઓમાં તેનો જન્મ થવાનું કારણ પણ તે ગુણોમાં તેની આસક્તિજ છે.

उपद्रष्टानुमंता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेतिचाप्युक्तो देहेस्मिन्पुरुषः परः ॥६३॥

इस देह में पुरुषका जीवात्माके साथ एक और परमपुरुष भी है जो साक्षी जीवकृत कर्मोंके शुभाशुभ फलका दाता, भरण-

पोषण करनेवाला, एक मात्र अपने आनंद स्वरूपका अनुभव करनेवाला है, उसको महेश्वर या परमात्मा कहते हैं।

આ દેહમાં પુરૂષ જીવાત્માની સાથે રહેલો પણ દેહથી પરે એવો બીજો પરમ પુરૂષ પણ છે જે સાક્ષી રૂપે, જીવે કરેલાં સારાં નરસાં ફળોનો દેવાવાળો સૌનો ભરણ પોષણ કરવાવાળો એક માત્ર પોતાના આનંદસ્વરૂપને ભોગવનારો મહેશ્વર પરમાત્મા કહેવાય છે.

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥ ६४ ॥

हे अर्जुन ! अनादि होनेसे और निर्गुण होनेसे यह निर्विकार परमात्मा शरीरके भीतर रहकर भी न कुछ करता है और न संगको प्राप्त होता है।

હે અર્જુન ! અનાદિ તથા નિર્ગુણ હોવાથી એ નિર્વિકાર પરમાત્મા શરીરની અંદર વ્યાપક હોવા છતાં પણ કાંઇ કરતો નથી કે લિપ્ત થતો નથી.

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ६५ ॥

हे महाबाहो ! वीरशिरोमणे ! सत्वगुण, रजस् और तमस् यह प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं और अविनाशी जीवात्माको देहमें बांध देते हैं।

હે મહાબાહો (વીરશીરોમણિ) સત્વ, રજસ અને તમસ

એ ગુણો પ્રકૃતિમાંથી પેદા થાય છે અને અવિનાશી જીવાત્માને દેહમાં બાંધે છે.

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ ६६ ॥

सत्त्वगुणसे ज्ञान प्रकट होता है, रजोगुणसे लोभ, और तमोगुण से प्रमाद, मोह तथा अज्ञान प्रकट होते हैं ॥

સત્વગુણથી જ્ઞાન પ્રકટ થાય છે, રજોગુણથી લોભ અને તમોગુણથી પ્રમાદ, મોહ તથા અજ્ઞાન પ્રકટ થાય છે.

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः ॥ ६७ ॥

जो सत्वगुण में स्थिर हैं वह उच्च गति को प्राप्त होते हैं, रजोगुणवाले सामान्य अवस्था को तथा तमोगुणवाले अधमगति को प्राप्त होते हैं ।

જે સત્વગુણવાળાઓ છે તેને ઉચ્ચ અવસ્થા મળે છે, રજોગુણવાળાઓ સાધારણ અવસ્થામાં રહે છે તથા તમોગુણવાળાઓને અધમ અવસ્થા મળે છે.

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥६८ ॥

मनुष्योंको श्रद्धाभी स्वभाव से ही सात्विकी, राजसी और

तामसी ऐसी तीन प्रकारकी होती है, उसको सुन ।

દેહધારી જીવોની શ્રદ્ધા પણ સ્વભાવથીજ સત્વગુણી, રજોગુણી તથા તમોગુણી એમ ત્રણ પ્રકારની હોય છે, તેને સાંભળ.

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ ६९ ॥

सात्विक श्रद्धा वा भाववाले लोग देव अर्थात् परमात्मदेव तथा मातृदेव, पितृदेव, आचार्यदेव और अतिथि आदि देवोंको पूजते हैं, राजस लोग धनाढ्योंको तथा कुटिलोंको भजते हैं और तामसलोग मृतों तथा पंच भूतादिक पदार्थों की पूजा करतेहैं ।

સાત્વિક શ્રદ્ધાવાળા મનુષ્યો દેવ એટલે પરમાત્મદેવ, માતૃદેવ, પિતૃદેવ, આચાર્ય દેવ અને અતિથી આદિ દેવ-પૂજ્યોને પૂજે છે, રાજસી શ્રદ્ધા, વાળાઓ ધનાઢયોને તથા કુટિલોને ભજે છે અને તામસી શ્રદ્ધાવાળાઓ મરેલાઓને તથા પંચભૂતાદિ પદાર્થોની પૂજા કરે છે.

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७० ॥

अपने स्वभावानुसार सब लोगोंका भोजन भी तीन प्रकार का प्यारा होता है और इसी प्रकार यज्ञ, दान, तप ये भी तीन तीन प्रकार के होते हैं, उनके इस भेद को सुनो ।

પોતાની પ્રકૃતિ અનુસાર સર્વ લોકોનો ખોરાક પણ ત્રણ પ્રકારનો પ્રિય

હોય છે; તેવીજ રીતે યજ્ઞ, તપ અને દાન પણ ત્રણ-ત્રણ પ્રકારનાં છે; તેઓનો તફાવત સાંભળ.

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥७१॥

आयु जीवनशक्ति, बल, आरोग्य, चित्तकी प्रसन्नता और रुचिको बढ़ानेवाले, रसोंवाले चिकने, शीघ्र न बिगड़नेवाले हृदय को प्रसन्न रखनेवाले अर्थात् दुर्गन्धादि दोषों से रहित भोजन सात्विक लोगों को प्यारे होते हैं ।

ઉમર, જીવનશક્તિ, બળ, તંદુરસ્તી, પ્રસન્નતા અને રૂચિને વધારનારા, રસ (સ્વાદ) વાળા, ચીકાશવાળા, બગડે નહીં એવા, અને હૃદયને પ્રિય લાગે એવા, એટલે કે દુર્ગન્ધ વગેરે દોષોથી રહિત ખોરાકો સાત્વિક મનુષ્યોને પ્રિય હોય છે.

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ७२ ॥

कड़वे, अतिखट्टे, अतिखारे, अतिगरम, अतितीखे, चिकने पनेसे रहित, दाह उत्पन्न करनेवाले और पीछे से दुःख, पश्चाताप, तथा क्षयादि रोगोंके देनेवाले भोजन रजोगुणी मनुष्यको प्रिय होते हैं ।

કડવા, અતિખાટા-ખારા, અતિ ઉના-તીખા, બળતરા કરનારા તથા પાછળથી દુઃખ પશ્ચાતાપ દેવાવાળા, અને ક્ષય વગેરે રોગોને ઉપજાવનારા,

ખોરાકો રજોગુણી મનુષ્યોને પ્રિય હોય છે.

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ ७३ ॥

अगले दिनका पका हुआ, अर्धपक, रस रहित दुर्गन्धिवाला (मांस मछली आदि) जो बहुत बासी हो गया हो, जो जूठा हो और अपवित्र हो ऐसा भोजन तमोगुणी लोगों को प्रिय होता है ।

ગયા દિવસનું રાંધેલું કે અર્ધું કાચું પાકું રસ વગરનું, દુર્ગન્ધિવાળું (માંસ માછલી વગેરે) ઘણું વાસી, એંઠુ અને મલિન ભોજન તામસી લોકોને પ્રિય હોય છે.

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टोय इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥ ७४ ॥

"यज्ञ अवश्य करना चाहिए" ऐसा मनका संकल्प करके जो यज्ञ निष्काम कर्मी लोगों से विधि पूर्वक किया जाता है वह सात्विक होता है ।

" યજ્ઞ અવશ્ય કરવો જોઇએ " એવો મનનો સંકલ્પ કરીને જે યજ્ઞ ફળની થોડી પણ ઇચ્છા રાખ્યા શિવાય જે લોકોથી, વિધિપુર્વક કરાય છે તે સાત્વિક છે.

अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ ७५ ॥

हे भरतकुल में श्रेष्ट अर्जुन ! फलकी इच्छा करके और दंभ दिखलावट के लिए जो यज्ञ किया जाता है उसको राजस समझो ।

હે ભરતકુળમાં શ્રેષ્ઠ અર્જુન ! ફળની ઇચ્છા રાખીને અથવા દંભ દેખાવને માટેજ જે યજ્ઞ કરવામાં આવે છે તેને રાજસ જાણ.

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।। ७६ ।।

जिस यज्ञ में शास्त्रोक्त विधि न हो, जिसमें पात्रों को अन्नादि न दिया जाता हो, जो वैदिक मन्त्रों से न किया जाता हो जिसमें विद्वानोंको दक्षिणा न दी जाती हो, जो श्रद्धासे रहितहो ऐसे यज्ञ को तामस कहते हैं ।

જે યજ્ઞમાં શાસ્ત્રોક્ત વિધિ ન હોય, પાત્રોને અન્નાદિ દાન ન દેવામાં આવે જે વેદ મંત્રોથી ન કરવામાં આવે, જેમાં વિદ્વાનોને દક્ષિણા ન દેવાતી હોય તથા જે શ્રદ્ધા વગર કરાએલો હોય તે યજ્ઞ તામસ કહેવાયછે.

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।। ७७ ।।

(देव) परमात्मा, (द्विज) संस्कार युक्त ब्राह्मणादि वर्ण (गुरु) माता, पिता तथा आचार्य इत्यादि और (प्राज्ञ) अतिथि आदि विद्वान् यह सबका पूजन, शुद्ध रहन सहन, सरल आचरण

शमदम संपन्न होकर ज्ञान प्राप्त करना और हिंसा न करना यह शरीर का तप कहलाता है।

(દેવ) પરમાત્મા (દ્વિજ) સંસ્કારયુક્ત બ્રાહ્મણાદિ વર્ણ (ગુરૂ) માતા, પિતા તથા આચાર્ય વગેરે અને (પ્રાજ્ઞ) અતિથિ આદિ વિદ્વાન એ સર્વનું પૂજન, પવિત્ર રહેણી કરણી, સરલ આચરણ શમ દમ સંપન્ન થઇને જ્ઞાન મેળવવું, તથા હિંસા ન કરવી આ બધાં શરીરનાં તપ કહેવાય છે.

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्य प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ ७८ ॥

जो वाक्य किसीको उद्विग्न नहीं करता सत्य है, सुनने में प्यारा और आगे को हितकर है तथा शास्त्रोंका पठनपाठन करना वह वाणीका तप है।

કોઇને માઠું ન લાગે તેવું સાચું, પ્રિય અને હિતકર વચન બોલવું તેમજ શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ અને પઠન પાઠન કરવાં એ વાણીનું તપ કહેવાય છે

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ ७९ ॥

मनकी प्रसन्नता, शान्तस्वभाव, बहुत कम बोलना आत्मनिग्रह, और हृदय की पवित्रता यह मनका तप कहा जाता है।

મનની પ્રસન્નતા, શાન્ત સ્વભાવ, ઘણું થોડું બોલવું, આત્મનિગ્રહ અને હૃદયની તથા ભાવનાની પવિત્રતા એ મનનાં તપ કહેવાય છે.

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥ ८० ॥

"दान करनाही चाहिए" ऐसा समझकर योग्य देश काल और पात्रका विचार करके तथा जिससे प्रत्युपकारकी आशा न की जाय ऐसेको जो दान दिया जाता है वह सात्विक दान कहा जाता है ।

" આપવું જ જોઇયે " એમ સમજીને યોગ્ય દેશ, કાળ અને સુપાત્રનો વિચાર કરીને તથા જેની પાસેથી વળતા બદલાની આશા ન હોય એવાને જે દાન આપવામાં આવે તેને સાત્વિકદાન કહેલું છે.

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ ८१ ॥

जो अपना उपकार करनेके प्रतिफल स्वरूप दिया गया हो, अथवा किसी लाभको उद्देश्य रखकर दिया गया हो और खिन्न मनसे दिया गया हो वह दान राजस कहलाता है ।

જે દાન બદલો મેળવવાના હેતુથી, ફળની ઇચ્છા તથા કચવાતે મને અપાય છે તે રજોગુણી કહેવાય છે.

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ८२ ॥

जो दान अयोग्य देशकाल में और अपात्रों के लिए दिया

गया हो उसको तथा असत्कार और तिरस्कार पूर्वक दिया गया हो उसको तामस दान कहते हैं।

જે દાન અયોગ્ય દેશ કાળમાં અને કુપાત્ર મનુષ્યોને દેવાય છે તથા જે સત્કાર વિના તિરસ્કારથી દેવાય છે તે તામસ દાન કહેવાય છે.

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।।८३।।

जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक् पृथक रहे हुए सब भूतो में एक अखण्डित अविनाशी ब्रह्मतत्त्व को अनुभव करता है उस ज्ञानको सात्विक समझो ।

જે જ્ઞાનથી મનુષ્ય જુદાં જુદાં રહેલાં સર્વ ભૂત–પ્રાણીઓમાં એક અખંડિત અને અવિનાશી બ્રહ્મતત્વને અનુભવે છે તેને સાત્વિક દાન સમજો.

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ।। ८४ ।।

जिससे मनुष्य पृथक् पृथक् रहे हुए सब भूतों में विधविध भावना करके अनेक देवता वादको मानता है उस ज्ञानको राजस जानो ।

જે જ્ઞાનથી મનુષ્ય જુદાં જુદાં રહેલાં સર્વ ભૂતોમાં વિવિધ પ્રકારની ભાવનાઓ કરીને અનેક દેવતા વાદને માને છે તે જ્ઞાનને રજોગુણી જાણો.

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ।। ८५ ।।

जिस ज्ञानसे मनुष्य एकही कार्यमें सम्पूर्ण के समान मानने लगता है जैसाकि जीव देहमात्र है और ईश्वर अमुक प्रतिमामात्र है जो मिथ्या, तुच्छ और युक्तिहीन ज्ञान है उसको तामसज्ञान कहते हैं।

વળી જે જ્ઞાનથી મનુષ્ય એકજ વસ્તુ-કાર્યમાં બધું માની બેસે છે જેમકે દેહ એજ જીવ છે અને અમુક પ્રતિમા માત્ર ઇશ્વર છે, જે તદ્દન મિથ્યા-તુચ્છ અને યુક્તિ વગરનું છે તેને તામસ જ્ઞાન કહે છે.

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥८६॥

जो सुख प्रारंभमें विषके समान अनिष्ट मालूम पडे परंतु अंतमें अमृत के समान होता है और जो सुख आत्मसंतुष्टिसे उत्पन्न होता है वह सुख सात्विक कहा गया है।

જે સુખ શરુઆતમાં ઝેર જેવું લાગે પણ પરિણામે અમૃત જેવું. નિવડે તથા જે સુખ આત્મસંતોષ પૂર્વક પેદા થયેલું છે તેને સાત્વિક સુખ કહે છે.

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ८७॥

विषय और इन्द्रियके संयोगसे जो सुख प्रारंभमें अमृतके समान परंतु परिणाममें विषके समान प्रतीत हो वह सुख राजस कहा जाता है।

વિષયો અને ઇન્દ્રિયોના સંયોગથી જે સુખ થાય છે તે પ્રથમ તો અમૃત જેવું લાગે છે પણ પાછળથી ઝેર જેવું નીવડે તેને રજોગુણવાળું સુખ કહે છે.

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ८८ ॥

जो आदिमें और अंतमें भी आत्माको मोहमें डालनेवाला हो, जो निद्रा, आलस्य और भ्रमके लिए पैदा हुआ हो वह सुख तामस कहलाता है ।

જે સુખ આરંભમાં તેમજ પરિણામે પણ આત્માને ચક્કરે ચઢાવનારૂં હોય, વળી જે ઉંઘ, આળસ તથા ભ્રમને વધારનારૂં છે તે સુખ તમોગુણી કહેવાય છે.

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ८९ ॥

हे अर्जुन ! ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण, क्षतसे रक्षा करने वाले क्षत्रिय, व्यापारादि कर्मों से सारे संसारमें प्रविष्ट होनेवाले वैश्य और दासभाव प्रकट करनेवाले शूद्र इन सब लोगों के कर्म अपने प्रकृति अनुकूल स्वाभाविक गुणोंसे भिन्नभिन्न प्रकारके होते हैं ।

હે અર્જુન ! બ્રહ્મવેત્તા બ્રાહ્મણો, દુઃખીની રક્ષા કરવાવાળા ક્ષત્રિયો, વ્યાપાર વગેરે કર્મોથી આખા સંસારમાં દાખલ થવાવાળા વૈશ્યો તથા દાસભાવ કરવાવાળા શૂદ્રો આ સઘળા લોકોનાં કર્મો પોતાની પ્રકૃતિ અનુકૂળ ગુણોથી ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારનાં હોય છે.

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ९० ॥

शम (मनका रोकना) दम (इद्रियोंको वश करना) तप (शीतोष्णको सहना) पवित्रता, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता यह गुण सत्त्व प्रधान ब्राह्मण प्रकृतिवाले मनुष्योंमें होते हैं ।

શમ, દમ, તપ, પવિત્રતા, ક્ષમા, સરલતા, જ્ઞાન, વિજ્ઞાન અને આસ્તિ-કતા આ નવ ગુણુ સત્વપ્રધાન બ્રાહ્મણુ વૃતિવાળા મનુષ્યોમાં હોય છે.

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ९१ ॥

शूरवीरता, तेज, हिम्मत समयसूचकता, युद्धसे नहीं भागना दानदेना, और शासनभाव यह क्षत्रियके शीलजन्य कर्म हैं ।

શૂરવીરતા, તેજ, હિંમત, સમયસૂચકતા, યુદ્ધમાં લડતાં પીઠ ન દેખાડવી, દાન દેવું અને શાસનભાવ એ ક્ષત્રિયનાં શીલજન્ય કર્મ છે.

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ९२ ॥

खेती, गोरक्षा, और व्यापार यह वैश्योंके शीलजन्य कर्म हैं और शूद्रोंका कर्म नौकरी चाकरी करना है ।

ખેતી, ગાય બળદ વગેરે પશુપાલન તથા વ્યાપાર રોજગાર એ વૈશ્યોનાં શીલજન્ય કર્મો છે અને નોકરી ચાકરી વગેરે સેવા કર્મો શૂદ્રોનાં છે.

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ।। ९३ ।।

अपने अपने स्वभावानुकूल कर्मोंमें लगा हुआ पुरुष इष्ट सिद्धिको प्राप्त होता है। अपने अधिकारयुक्त कर्मोंमें लगा हुआ पुरुष जिसप्रकार सिद्धिको लाभ करता है उसे समझ।

પોતપોતાના સ્વભાવ તથા અધિકારયુક્ત કર્મોમાં લાગેલો મનુષ્ય ઇષ્ટ સિદ્ધિને પામે છે; પોતાના અધિકારયુક્ત કર્મોમાં મચી રહેનારો મનુષ્ય જે રીતે સિદ્ધિને મેળવે છે તેને સમજ.

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।। ९४ ।।

दूसरोंके स्वभावसिद्ध उच्च कोटि के धर्मकर्म करनेकी अनधिकार चेष्टासे अपने स्वभावानुकूल साधारण गुणवाले कर्तव्य कर्म करते रहना अच्छा है क्योंकि स्वभावसे नियत जो कर्म उसको करता हुआ मनुष्य पापको नहीं प्राप्त होता।

બીજાના સ્વભાવને બંધ બેસતાં ઉચ્ચ કોટિનાં ધર્મ કર્મ કરવાની અનધિકાર ચેષ્ટા કરવા કરતાં પોતાના સ્વભાવને બંધ બેસતાં સાધારણ ગુણ–કોટિનાં કર્તવ્ય કર્મો કરતા રહેવું વધારે સારું છે કેમકે પોતાના

સહજ સ્વભાવ અને અધિકારને અનુસરતું કર્મ કરનારો મનુષ્ય દુઃખી થતો નથી.

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ।। ९५ ।।

हे अर्जुन ! स्वभावजन्य अपनी प्रकृतिसे जो प्राप्त कर्म हो वह दोषवाला भी हो तव भी उसको मनुष्य न छोडे । सभी काम दोषसे व्याप्त होते हैं, जैसे अग्नि धूमसे व्याप्त होती है ।

માટે હે અર્જુન ! પોતાની પ્રકૃતિને અનુકૂળ સહજ ગુણ સ્વભાવે કરાતાં પોતાના વર્ણાશ્રમનાં ધર્મ કર્મો અમુક વર્ણાશ્રમનાં ધર્મ કર્મો અમુક વર્ણાશ્રમનાં કરતાં દોષવાળાં જણાય તોપણ તેને મનુષ્ય ન છોડે; કેમકે ધુમાડાથી જેમ અગ્નિ છવાયલો હોય છે તેમ સર્વ કર્મો દોષોથી છવાયલાં છે.

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ।।९६।।

हे अर्जुन ! यद्यपि इस समय तू भ्रमसे यह युद्धरूप कर्म करना नहीं चाहता परंतु क्षत्रिय स्वभावजन्य कर्मोंसे बंधा हुआ होनेसे अन्तमें तू यह कार्य अवश्य करेगा ।

હે અર્જુન ! જોકે અત્યારે મોહથી તું આ યુદ્ધ રુપી કર્મ કરવા નથી

ચાહતો પરંતુ ક્ષત્રિય સ્વભાવવાળાં કર્મોથી તું બંધાયલો હોવાથી આખર પણ તે કાર્યને જરૂર કરીશજ.

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ ९७ ॥

हे अर्जुन ! सब भूत प्राणियोंके हृदय प्रदेश में ईश्वर विराजमान हैं, कर्म चक्रपर चढे हुए सब प्राणियोंको वह अपनी शक्तिसे नियममें चला रहा है ।

હે અર્જુન ! ભૂત પ્રાણીઓને હૃદય મંદિરમાં ઇશ્વર વિરાજમાન છે. કર્મ ચક્રપર ચઢેલાં સર્વ પ્રાણીઓને તે પોતાની શક્તિથી નિયમમાં ચલાવી રહયો છે.

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥९८॥

हे भारत ! पूर्ण श्रद्धासे तू उसी ईश्वरकी शरणमें जा । उस प्रभुकी कृपासे तू परमशान्ति और अचल पदको प्राप्त होगा (अब तेरा मोह हटा ?)

હે અર્જુન ! પૂર્ણ સદ્દભાવથી તું તેજ ઇશ્વરની શરણમાં જા તેની કૃપાથી તું પરમશાન્તિ તથા અવિચળ પદને પામીશ. (કહે હવે તારો મોહ નષ્ટ થયો ?.)

अर्जुन उवाच ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ६६ ॥

हे कृष्ण ! आपकी कृपासे मेरा भ्रम नष्ट हो गया और मैंने क्षात्रधर्मकी ज्ञानस्मृति प्राप्त की । अब मैं संदेह रहित हो गया हूं इस लिए युद्धकर्मरूप आपकी आज्ञाका पालन अवश्य करूंगा ।

હે કૃષ્ણ ! આપની કૃપાથી મારો ભ્રમ નષ્ટ થઇ ગયો અને મેં ક્ષત્રિય ધર્મનું જ્ઞાન મેળવ્યું. હવે હું સંદેહ રહિત થઇ ગયો છું અને તેથી યુદ્ધ રૂપી આપની આજ્ઞાનું પાલન જરૂર કરીશ.

सञ्जय उवाच ।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥१००॥

हे धृतराष्ट्र ! अब तो जिस पक्ष में योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन हैं उसी पक्षमें लक्ष्मी, विजय, उन्नति तथा अचलनीति यह चारों बातें अवश्य होंगी यह मेरी सम्मति है ।

હવે તો હે ધૃતરાષ્ટ્ર ! જે પક્ષમાં યોગેશ્વર કૃષ્ણ તથા ધનુર્ધર વીર અર્જુન છે તે પક્ષમાં સંપતિ, વિજયશ્રી, ઉન્નતિ અને નીતિ વગેરે બધું પ્રાપ્ત થશે એવી મારી દૃઢ માન્યતા છે.

समाप्त

हमारा प्रकाशनः—

(१) **संस्कार चन्द्रिका** महर्षि दयानन्द प्रणीत संस्कार विधि की विस्तृत तथा सरल व्याख्या। मू० ३॥)

(२) **सृष्टि विज्ञान** डारविन मत आलोचना तथा वैदिक सिद्धान्तों का मण्डन है (द्वितीय संस्करण छपता है) मू० ३)

(३) **दिग्विज्ञान** मनसा परिक्रमा के मंत्रों की अपूर्व व्याख्या। मूल्य १॥)

(४) **शरीर विज्ञान** शल्य विद्या का आदि मूल वेद में है मू० ।≶)

(५) **आत्मस्थानविज्ञान** शरीर में आत्मा का स्थान कहां है मू०-)

(६) **गीतासार** १०० गीताके श्लोकों का सार हिन्दी गुजराती में मू०।-)

(७) **ऋषि पूजाकी वैदिक विधि** =)

(८) **मजहवे इसलाम पर एक नजर** =)

(९) **नीतिविवेचन** में नीतिशास्त्र की भिन्न भिन्न पद्धतियां सामान्य स्वरूप पाश्चात्य नीतिशास्त्र और कई महत्वपूर्ण लेख हैं इस पुस्तक के रचयिता बड़ेबड़े विद्वान् महापुरुष हैं मू० १।)

(१०) **कोष की कथा** जीवकोष का सचित्र वर्णन मू० ॥)

(११) **श्रीहर्ष** भारतीय अंतिम आर्य सम्राट का जीवन चरित्र मू०॥)

(१२) **आरोग्यता** इस विषय पर महत्व पूर्ण पठनीय लेख है। मू०॥)

(१३) **औरंगजेव** मुगलसम्राट औरंगजेबका हिन्दी भाषा में ऐसा इतिहास उत्तम सचित्र नहीं छपा यह बहुत बढ़िया है मू० ॥)

(१४) **चीन की संस्कृति** चीन के संबंध में महत्वपूर्ण पुस्तक पृ. सं. लगभग २५० मू. १।≈) प्राचीन समय से लेकर पूरा इतिहास देकर भविष्य तक का वर्णन है।

(१५) **हिन्दुस्तान** भाषा कवितामें शुभ संवाद बड़ी उत्तम पुस्तक है।

(१६) **गुजराती हिन्दी शब्दकोष** मूल्य ६)

(१७) **वैदिक विवाहादर्श** (छपरहा है)

(१८) **धर्म की उत्पत्ति और विकास** मू० १।=)

(१९) **कुञ्ज मुनि ज्ञानामृत** मू० १)

प्राप्तिस्थान जयदेव ब्रदर्स—बडोदा.